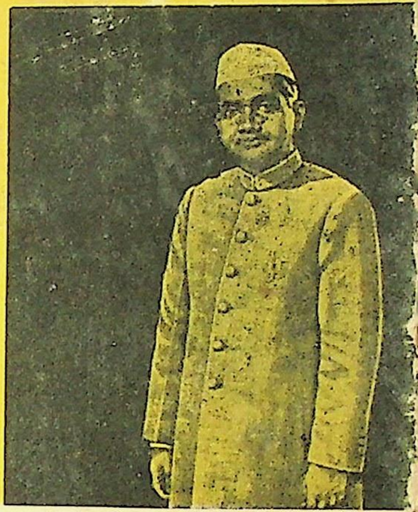
शास्त्रिन् बने तुम सबल ।
शस्त्री स्वत्व संरक्षण किया ॥

अधिकार भारत का अजेय ।
विपक्ष को दिखला दिया ॥

तुम थे बहादुर विश्व के ।
निज जन्म भू के लाल थे ।

स्वातन्त्र्य संस्थिति के लिए ।
तुम देश के दिक्पाल थे ॥ ॥



स्वातन्त्र्य गौरव गीतिका

प्रो० शम्भु शुक्ल 'अभीत'

आदरणीय गुरुवर
प्रो० राम स्वरूप आर्य
अध्यक्ष हिन्दी विभाग
वर्द्धमान कालेज
बिजनौर,
के कर कमलों
में सादर —

४.११.६८.

शम्भु

स्वातन्त्र्य गौरव गीतिका

प्रो० शम्भु शुक्ल 'अभीत'
अध्यक्ष हिन्दी विभाग
उपाधि महाविद्यालय, पीलीभीत ।

बन्धु प्रकाशन, पीलीभीत ।

प्रकाशक :—
बन्धु प्रकाशन पीलीभीत ।

वितरक :—
१. प्रकाश बुक डिपो, बड़ा बाज़ार, बरेली ।
२. चावला बुक स्टाल, स्टेशन रोड, पीलीभीत ।

प्रथम संस्करण—२ अक्तूबर १९६८

मूल्य—दो रुपये पचास पैसे

मुद्रक :—
विजय मुद्रणालय
मु० शाहबाद, बरेली

परिचायिका

स्वतन्त्रता का इतिहास सृष्टि का इतिहास है जिसके आदि और अन्त का अनुमान भी नहीं किया जा सकता। स्वतन्त्रता का इतिहास लिखने से पूर्व विश्व-सृष्टि के इतिहास की समीक्षा करनी पड़ती है। आधुनिक विज्ञान जिस परमाणु शक्ति का अनुभव प्राप्त कर रहा है, सृष्टि की उत्पत्ति उसी शक्ति से हुई है जो वेदों में 'अणोरणीयान् महतोमहीयान्' † इत्यादि शब्दों से वर्णित है।

अनादि काल में विश्व के समस्त तत्व या पदार्थ उसी एक ब्रह्म में केन्द्रीभूत थे। एक से अनेक हो जाने की इच्छा करते ही उक्त केन्द्रीय शक्ति से समस्त विभिन्न शक्तियों का पृथक्करण हुआ। यह पृथक्ता की उत्पत्ति ही द्वन्द्वभावों की जननी है। विश्व का अणु अणु एक प्रतिक्रियात्मिका शक्ति से सम्बन्धित है। जड़चेतन सभी किसी न किसी के प्रतिद्वन्द्वी अवश्य हैं।

जो कुछ भी उत्पन्न हुआ, अपने प्रतिद्वन्द्वी को साथ लेकर ही उत्पन्न हुआ। अंधकार और प्रकाश में पहिले कौन प्रकट हुआ? शीतलता और उष्णता में से पहिले किसका अनुभव किया गया? यदि प्रकाश नाम की कोई वस्तु पहिले से ही विद्यमान न हो तो अंधकार किसे कहा जावेगा? सुख नामक किसी परिस्थिति का यदि पूर्व ही अनुभव न किया गया हो तो दुःख किसे समझा जावेगा? यदि उष्णता नाम की कोई अनुभूति कहीं वर्तमान न हो तो शीतलता क्या वस्तु होगी?

प्रतिक्रियात्मिका शक्ति न्यूटन का आविष्कार नहीं, सृष्टि का इतिहास जिसका वास्तविक वर्णन हमारे वेदों में उल्लिखित है, इस तथ्य पर ही आधारित है कि "उत्पत्ति ही उसकी न है, जिसका प्रतिद्वन्द्वी न हो।" पदार्थ मात्र अविनाशी परन्तु परिवर्तनशील है। यह परिवर्तन कौन करता है? उसकी प्रतिक्रियात्मिका शक्ति। स्वयं को सुरक्षित रखकर अपने प्रतिद्वन्द्वी पर विजय प्राप्त करने की भावना, कल्पना वा शक्ति सृष्टि के अणु अणु में विद्यमान है। इसी स्वरक्षा और स्वविकास को अपने प्रतिद्वन्द्वियों से अबाधित रखने का नाम ही स्वतंत्रता है जो सृष्टि-इतिहास से अभिन्न तथा सम्बन्धित है।

---

† वह ब्रह्म परमाणु से भी सूक्ष्म और महान् से भी महान् है।

बरेली

वास्तविक स्वतंत्र कौन है ? साधारणतया कहा जा सकता है कि 'जो किसी अन्य के अधीन नहीं ।' परन्तु हमें इस वास्तविकता के कथन का गर्व है कि "जो किसी को भी पराधीन देखना नहीं चाहता" उदाहरण के लिये हमें न तो इतिहास के पृष्ठ उलटने हैं और न कहीं विदेशों में जाकर अन्वेषण करना है । अपनी ज्योति से जगत् में जगमगाने वाला हमारा जवाहरलाल इस तथ्य का सजीव उदाहरण है ।

अन्य समस्त पदार्थों की भाँति प्रवृत्ति भी द्वन्द्वी भावापन्न हुई । दैव आसुरी इन्हीं दो प्रवृत्तियों के वशीभूत निखिल ब्रह्मांड है ! भारतीय पौराणिक कथानकों में देवासुर संग्राम की विभिन्न और विचित्र घटनाओं का उल्लेख अधिकांशतः आलंकारिक भाषा में हैं जिनके वास्तविक अर्थ को व्यक्त करना भी दु:साध्य हो गया है । इन कथानकों में हमें तीन विषय बड़े महत्व के प्राप्त हैं—प्रथम संजीविनी विद्या । द्वितीय शक्ति उपासना और तृतीय अमृतान्वेषण । इधर हमें अपनी मृतप्राय स्वाधीनता को पुनर्जीवित कर शक्ति संचय के द्वारा उसे अजर अमर बनाने के साधनों की महती आवश्यकता रही । प्रस्तुत प्रबन्ध के आरम्भ में इन्हीं तीनों साधनों की आवश्यकता का विवेचन किया गया है ।

भारतीय स्वतन्त्रता के सम्बन्ध में यह कहना अनुचित न होगा कि अनादिकाल से उस समय तक जब तक कि शहाबुद्दीन गौरी ने भारत पर अधिकार जमाना आरम्भ नहीं किया, भारत स्वतन्त्र रहा । हमारी स्वतन्त्रता प्राचीन संस्कृति और सभ्यता ही हमारे महान् गौरवमय तत्व हैं जिन्हें अपनाये रखने में ही हमारा भारतीयत्व और स्वातन्त्र्य है, फलतः उस अवधि को ही भारत की पराधीनता कहा गया है। जब हमारे स्वत्व हमारे अधिकार से बाहर रहे । इस छोटे से प्रबन्ध में भी हम अपने उस ऐश्वर्यपूर्ण सांस्कृतिक जीवन का वर्णन किये बिना न रह सके और फलतः भारतीय विभूति के विनाशक गृह युद्ध महाभारत का समीक्षण भी पाठकों के समक्ष प्रस्तुत करना पड़ा । यह कहने की आवश्यकता नहीं कि किसी कर्मवीर स्वतन्त्रता के पुजारी के लिये योगिराज कृष्ण का गीता उपदेश कितना महत्वपूर्ण और अनुपालनीय है । स्वतन्त्रता की यह 'गौरव गीतिका' अति स्वल्पशब्दात्मिका होते हुये भी उन उपदेशों का स्मरण किये बिना न रह सकी ।

महाभारत नामक उस गृह युद्ध के भीषण परिणामस्वरूप भारत के ऐश्वर्य-युग का अन्त सा हो गया। जनसंहार से उत्पन्न उस गहन अंधकार में हमारे सुसंबद्ध इतिहास का अनुक्रम लुप्त हो गया और चिरकाल तक संसार के विभिन्न देशों का सम्बन्ध भारत से विच्छिन्न रहा। भारत का दिनोदिन पतन होता रहा और अन्यान्य देश भारत के नियंत्रण से अलग होकर अपने अपने उत्कर्ष में लग गये। हजारों वर्षों तक भारत से उनका कोई सम्बन्ध न रहने के कारण भारत उनके लिये एक नयी वस्तु बन गया। महाभारत का दु:खान्त नाटक देखते और सुनते हुये भी भारतीय राजा पारस्परिक विद्वेष और गृह युद्ध को मिटा न सके और सिकन्दर से आरम्भ होकर आज तक अन्यान्य देशों के कार्यक्रम हमारी स्वतन्त्रता पर आक्रमण करने के लिये बनते चले आ रहे हैं।

संक्षेपत: इस छोटे से निबन्ध में प्राय: उन सभी घटनाओं और विदेशी आक्रमणों का स्मरण किया गया है जिनका प्रभाव हमारी स्वतन्त्रता पर पड़ा। अन्त मे विश्व बंधु बापू के नेतृत्व में उस स्वतन्त्रता की प्राप्ति का गान है जो प्राय: एक सहस्त्र वर्ष बाद हमें पुन: प्राप्त हो सकी।

इतिहास और कविता में अन्तर है। कविता प्राय: ऐतिहासिकता का उल्लंघन कर जाती है परन्तु मेरे इस प्रथम प्रयासात्मक छन्दोबद्ध प्रबन्ध में कवित्व गुण कहाँ? इसका लेख तो वह टेंढ़ी मेढ़ी रेखायें मात्र हैं जो स्वतंत्रता देवी का चित्रण करते हुये खींची गई हैं।

आदरणीय मामा जी श्री राजनारायण मिश्र का आशीर्वाद ही मेरा सम्बल रहा है। उनके ही आशीर्वाद से यह कृति प्रकाश में आयी है। मैं सदेव ही उनके आशीर्वाद की कामना करता हूँ। छोटे भाई मोतीलाल अग्रवाल, उमेश चन्द्र एवं वृजविनोद मिश्र विशेष रूप से सहयोगी रहे अतः उन्हें आशीर्वाद देता हुआ सुख-सौभाग्य की कामना करता हूँ। मित्र मंडली में श्री विद्याधर पांडे ऐडवोकेट, जमुनाप्रसाद पांडे ऐडवोकेट, कैलाशचन्द्र वर्मा 'विमुख', 'पुष्प जी', 'विचित्र जी' एवं 'शम्भु जी' धन्यवाद के पात्र हैं जो सदैव कुछ न कुछ लिखने का आग्रह करते रहते हैं।

छोटी बहिन सुधा और सुमन को शुभ भावनाओं सहित आशीर्वाद—जो भाई साहब की कृतियों की पाण्डुलिपि तैयार करने में ही अपने को कृतार्थ मानती हैं।

'स्वातन्त्र्य गौरव गीतिका' पाठकों के समक्ष प्रस्तुत है। क्या है ? कैसी है ? इसके लिये इतना ही कहा जा सकता है।

"कविता रसिक ! न दिखा सकी अभिनय रुचिर रस रीति का ;
अनुलास्य हास्यवती न है 'स्वातन्त्र्य गौरव गीतिका'॥
जीवन सफलता के लिये अनिवार्य जिसका ज्ञान है।
उस तत्त्व के व्याख्यान का इस गान में सुविधान है॥"

× × ×

"मुस्तक न यह न प्रबन्ध न च कवि की सुरोचक कल्पना।
वाचक न कुछ भी हो सकी साहित्य की अभिव्यंजना॥
स्वातन्त्र्य प्रेमोद्गार के चरितानुर्चचित चित्र हैं।
स्वात्माभिमानी साधकों के यत्र तत्र चरित्र हैं॥"

पुण्य तिथि
२ अक्तूबर १९६८

'अभीत'

अनुक्रमणिका

साम्राज्य का विस्तार और क्षत्रीय राजाओं से संघर्ष। मुगल साम्राज्य का पतन और अंग्रेजों का आगमन। भारत में अंग्रेजी राज्य। सन् १९५७ का प्रथम स्वतन्त्रता संग्राम और भारतीयों की असफलता।

सप्तम सर्ग:—ब्रिटिश शासन का सिंहावलोकन। कांग्रेस का प्रादुर्भाव। पूज्य बापू का नेतृत्व।

अष्टम सर्ग:—स्वातन्त्र्य सूर्योदय। महात्मा गाँधी के सिद्धान्त और उपदेश बापू के प्रति अन्तिम विनय।

———

प्रथम सर्ग

अभिनय जहाँ पर सृष्टि की उत्पत्ति का विधि ने किया।
बनकर नटी नाची प्रकृति, सौन्दर्य निज छिटका दिया ॥
गोविन्द ! हो उस जन्मदा भारत-मही की गोद में।
जीवन व्यतीत 'अभीत' का स्वातन्त्र्य-गान-विनोद में ॥१॥

कविता-रसिक! न दिखा सकी अभिनय रुचिर रस रीति का।
अनुलास्य हास्यवती न है 'स्वातन्त्र्य-गौरव-गीतिका' ॥
जीवन सफलता के लिये अनिवार्य जिसका ज्ञान है।
उस तत्व के व्याख्यान का इस गान में सुविधान है ॥२॥

मिलता हमें जिसमें अतीतैश्वर्य का आभास है।
कहते हुये यों हो रहा प्रस्तुत वही इतिहास है ॥
"अस्तित्व अपना सर्वदा ही धर्म-रक्षा में रहा।
दो सांस्कृतिक-गौरव, लुटा, स्वातन्त्र्य ने न कभी कहा ॥३॥

मुक्तक न यह न प्रबन्ध न च कवि की सुरोचक कल्पना।
वाचक न कुछ भी हो सकी साहित्य की अभिव्यंजना ॥
स्वातन्त्र्य प्रेमोद्‌गार के चरितानुचर्चित चित्र हैं।
स्वात्माभिमानी साधकों के यत्र-तत्र चरित्र हैं ॥४॥

वाचक ! कथानक जो पुराणात्वाब्धि मध्य विलीन है।
वह ढूँढनी दुर्लभ अनुक्रमता हमें उसका न है ॥
स्वातन्त्र्य-संयुग-सिन्धु में बन स्वावलम्बी सर्वथा।
सिद्धान्त रत्नान्वेषण-श्रम कर रही प्रस्तुत कथा ॥५॥

करना हमें आरम्भ है उस काल से अपनी कथा।
जिसको अनादि विचारते इतिहास वेत्ता सर्वथा ॥
होते हुये भी ब्रह्म वह परमाणु ही उस काल था।
पर पूर्ण था, उस एक में एकस्थ विश्व विशाल था ॥६॥

मैं एक हो जाऊँ बहुत, उसकी हुई जब कल्पना।
तब योग निद्रा त्याग दी, सृजनार्थ-सृष्टि-विडम्बना ॥
परमाणुओं का विश्व के एकत्व वा संयोग ही।
उस ब्रह्म की थी योग-निद्रा वेद वाणी ने कही ॥७॥

शक्ति-त्रयी में ब्रह्म वह स्वयमेव परिवर्तित हुआ।
सर्गस्थिति प्रलयार्थ जगती के, त्रिविधि वर्णित हुआ ॥
सर्गात्मिका उस शक्ति का विधि नाम वेदों ने कहा।
स्थिति-शक्ति विष्णु कही गयी, संसार शान्ति सुखावहा॥८॥

प्रलयंकरी शिव नाम से वह शक्ति विश्रुत हो गयी।
उत्पत्ति प्रकटीकृत लगी होने विनश्वरता मयी ॥
निःशेष तत्व समूह जो उस एक में एकस्थ था।
होने लगा उनका पृथक् कृत रूप व्यक्त, बृहत्त था ॥९॥

बाहुल्य में जब ब्रह्म ने एकत्व परिवर्तित किया।
प्रकटी पृथकता, जन्म जिसने द्वन्द्व भावों को दिया ॥
अस्तित्व ही उसका न है जिसका प्रतिद्वन्द्वी न हो।
द्वन्द्वात्मिका ही सृष्टि यह उत्पन्न की विभु ने अहो ॥१०॥

सदसद, सुकृत-दुष्कृत, सुखासुख अंधकार प्रभामयी।
विस्तीर्ण क्रमशः सृष्टि द्वन्द्व विधायिका होती गयी ॥
अभमत्व, निर्विघ्नत्व, स्वच्छन्दत्व सबको प्रिय हुआ।
व्यापक अतः प्रतिद्वन्द्विभाव, त्रिलोक में सक्रिय हुआ ॥११॥

स्थायित्व का बनकर विपक्षी प्रकट परिवर्तन हुआ ।
निरवधिगति से काल का फिर विश्व में नर्तन हुआ ॥
वांछा हुई सबको प्रबल निज निज विपक्ष विनाश की ।
वाचक ! यही है भूमिका स्वातन्त्र्य के इतिहास की ॥१२॥

शक्तित्रयों की संप्रवृत्ति, विशाल विश्व नियामिका ।
वाचक ! प्रकृति के नाम से है ख्यात, द्वन्द्व विधायिका ॥
दो भावनाओं में किया जिसने विभाजन विश्व का ।
मिलता न आदि न अन्त है जिनके अमिट संघर्ष का ॥१३॥

वे दैव-आसुर नाम से विख्यात दोनों भाव हैं ।
प्रत्येक प्राणी में निहित जिनके 'अभीत' प्रभाव हैं ॥
सवृद्‌त्त, शुभ संकल्प-जन, पालक बने देवत्व के ।
दुर्मति दुराग्रह शील, अनुपालक सभी दनुजत्व के ॥१४॥

जो शक्तिशाली जब हुआ ऐश्वर्य को वह पा सका ।
निःशक्त को अनुभव हुआ न कभी स्वतंत्र विकास का ॥
दुर्वृत्त जो विधि के विधानों में बना बाधक यदा ।
अनुभव किया प्रतिकूलता का शक्ति की उसने तदा ॥१५॥

उस काल दानव-देव-दल प्रतिद्विन्द्वता में लग्न था ।
स्वातन्त्र्य के रण रक्त रत्नागार में विनिमग्न था ॥
बिबुधेश, वैभव-बल-विहीन बने अनेकों वार थे ।
उत्साह-साहस शौर्य के उनमें न शेष विचार थे ॥१६॥

वहु-विघ्न-बाधा-व्यथित वे विश्रान्त व्याकुल व्यग्र थे ।
साहाय्य साधन हीन हो विफल प्रयास समग्र थे ॥
मृत-दानवों को शुक्र निज संजीवनी के ज्ञान से ।
रण में बनाते थे अजेय नवीन जीवन दान से ॥१७॥

सुरराज यों बोला सभा में खिन्न हो सन्ताप से ।
"देवो ! न कुछ होगा कभी पुरुषार्थ हीन प्रलाप से ।।
स्वातन्त्र्य का सुख प्राण प्रिय गौरव हमारा खो गया !
अभिमान ज्वाला जाल में सम्मान स्वाहा हो गया ।।१८।।

परतन्त्र जीवन के लिये धिक्कार है अमरत्व को ।
होगी किसे प्रिय दासता, खोकर ससाधन स्वत्व को ।।
अधिकार ही जिस पर न हो उसमें विनीत ममत्व क्या ।
जो शत्रु-पद-मर्दित हुआ उसमें रहा फिर स्वत्व क्या ।।१९।।

उल्लास, परिवर्तित गया हो आज भीति विचार में ।
देवांगनाओं का ललित-व्याहार हाहाकार में ।।
नैराश्य तमसाकुल हुआ पथ-भ्रष्ट देव-समाज है ।
दनुजापहृत सब हो गया राजत्व-वैभव आज है ।।२०।।

"देवो ! तुम्हारे मानसों में आत्म बल विस्रम्भ है ।
लौहांगना स्वाधीनता का प्रिय तुम्हें परिरम्भ है ।
वा चाहते सोना कहो परतन्त्रता की गोद में ।
आसक्त हो क्या आज भी, ऐश्वर्यहीन प्रमोद में ।"

"निश्चेष्ट होकर कौन ? निज स्वत्वोपलब्धि-समर्थ है ।
आलस्य-पंक-प्रविष्ट होना यह सदैव अनर्थ है ।।
होना हताश कभी नहीं, प्रणवीर हो संघर्ष में ।
क्या है न सन्निहिता जयश्री शौर्यभावोत्कर्ष में ।।२२।।"

"कर्त्तव्य वीरों के सदा स्वयमेव विघ्न विमुग्ध हो ।
धृति-शौर्य-शक्ति प्रभाव के बनते सुपरिचायक अहो ।।
उत्साह को धारण करो, अस्तित्व खोना श्रेय है ।
पर, पारवश्याश्रित नहीं सम्मान वीरादेय है ।।२३।"

"विनिमग्न हो मरना भला रण रक्त वारिधि में सदा ।
परतन्त्र श्रमज स्वेद सिक्ताशालता न प्रिया कदा ।।
तुम कौन थे? क्या हो रहे ! निज शक्ति संचालन करो ।
सत्ता महत्ता के लिये वीरत्व प्रोत्साहन करो ।।२४।।

सुनकर पुरन्दर के वचन दनुजारि यों कहने लगे ।
धर्मावलम्बन कर विचार प्रवाह में बहने लगे ।।
दुर्दान्त दानव युद्ध में होते पराजित क्यों न हा ।
निज साधना श्रम में हमारा देव-दल निष्फल रहा ।।२५।।

संसार है निज-स्वत्व-साधन-हीन, हा न असार क्या ?
होंगे द्विपद्गातक कभी न सुरेश हृदयोद्गार क्या ?
अधिकार-रक्षा के लिये क्या युक्ति है क्या साधना ।
कुछ भी सफल होती नहीं ऐश्वर्य की आराधना ।।२६।।

"गुरुदेव ! तुम क्यों मौन हो, तुमने किया न विचार क्या ?
अपहृत न होते जा रहे अमरेश के अधिकार क्या ?
निज-विशद-पद-परिलिप्त-परिभव-पंक है धोना हमें ।
वैधव्य-वाधित-वैरि-वारिज-लोचनाम्बु प्रवाह में ।।२७।।

दानव-विजय का है रहस्य विधान क्या साधन तथा ।
गन्तव्य-पथ वह कौन है जिसमें न हों बाधा व्यथा ।।
होकर विरक्त मनश्चिता का त्यागना क्या श्रेय है ।
उद्योग में अनुरक्त हो वा स्वत्व-साधन ज्ञेय है ।।२८।।

आलोचना करते हुये त्रिदिवेश - भ्रष्टाचार की ।
बोला सुरेशाचार्य यों शुभ साधना प्रतिकार की ।।
"विश्वेश के साहाय्य से, होता सफल पुरुषार्थ है ।
विजयी बिबुध होते तथा यह निर्विवाद यथार्थ है ।।२९।।

पर आत्म निर्णय तो करो, निष्पक्ष हो तुम कौन हो।
दैतेय - भावासक्त वा, सद्वृत्ति-साधक सुर कहो ?
कहते जिन्हें तुम हो असुर वे दिव्य भावापन्न हैं।
सद्वृत्ति शुभ-संकल्प, शौर्यालोक से सम्पन्न हैं ।।३०।।

"तुमने विनष्ट किया समय जो हा विहार-विलास में।
अवसर उन्हें वह था, हुये वे लीन शक्ति विकास में।।
अविरत-तपः श्रय से उन्हें वे सिद्ध साधन प्राप्त हैं।
सुरराज के जो मान-मर्दन के लिये पर्याप्त हैं ।।३१।।

होकर पतित देवत्व के उत्तुंग शृङ्गोत्संग से।
आदर्शहीन विलासिता के पंक में तुम आ फँसे।।
दुर्वासना शय्या बना, सोत्साह साहस सोगया।
विषयाग्नि में,सामर्थ्य साधन शौर्य स्वाहा हो गया ।।३२।।

"केवल महत्व - मदावलम्ब नहीं महत्ता-योग है।
आधार योग-क्षेम का उसके अश्रान्तोद्योग है।।
उद्योग-हीना कामना में क्या कभी साफल्य है ?
उपचार-हीना औषधि का व्यर्थ गुण-प्राबल्य है ।।३३।।

भूतानुचिन्तन-भूल है, यह कालचक्र अजेय है।
सालस्य पश्चात्ताप ही उद्देश्य हीन विधेय है।।
संजीविनी का ज्ञान, जय का एक मात्र विधान है।
करता चकित संसार को जिसका विशद विज्ञान है ।।३४।।

जिसके विचित्र प्रभाव से उद्भ्रान्त सुर संघात है।
मृत दानवों को जो पुनर्जीवनप्रदा विख्यात है।।
अवशिष्ट तुम में आज भी यदि स्वाभिमानी भाव हैं।
अधीकार-रक्षा के उपस्थित यदि हुये प्रस्ताव हैं ।।३५।।

संजीविनी का भिक्षु तो फिर कौन परिकर बद्ध है।
जो शुक्र का जा शिष्य बनने के लिये सन्नद्ध है ॥
अनुभव करो अविलम्ब असुराचार्य के औदार्य का।
उनसे मिलेगा ज्ञान वह, जो हेतु है जय कार्य का ॥३६॥

अन्योन्यवदनाबद्ध लोचन देख सुर-समुदाय के।
करने लगा कच प्रकट चारु विचार यों सदुपाय के ॥
अनुसरण करना श्रेय है, हे तात ! तव आदेश का।
आप्तोपदेशादर सदा करता निवारण क्लेश का ॥३७॥

"निष्क्रिय स्वजात्युत्कर्ष में जन, आत्म गौरव हीन है।
जीवन नहीं जो जाति सेवा में सदा तल्लीन है ॥
साफल्य है जीवन प्रगति का, देश प्रेम प्रमोद में।
शोभा क्षण द्युति की यथा अभिराम श्याम पयोद में ॥३८।

"संजीविनी को प्राप्त कर, बन शिष्य शुक्राचार्य का।
मैं शीघ्र संचालन करूँगा, स्वत्व साधक-कार्य का ॥
वह यों वृहस्पति पुत्र जब जाने लगा कहते हुये।
विबुधेश वैभव कामना की धार में बहते हुये। ३९॥

कच शीश को करतीं विभूषित सुमन वृष्टि विहार से।
कहने लगीं सानन्द विबुधविलासिनी सुकुमार से ॥
"उत्साह-साहस-शील कच तुम धन्य हो संसार में।
अनुपम मनोरम रत्न हो सुरलोक रत्नागार में ॥४०॥

संजीविनी को प्राप्त कर आचार्य सेवा भाव से।
करदो सबोध प्रचार उसका श्रुति-सुखद प्रस्ताव से।
दानव-निधन का भेद पाकर, विश्व विजयाह्लाद से।
करदो विशोक सुरेश लोक 'अभीत, सुख सम्वाद से ॥४१॥

निज देश मुख उज्ज्वल करो, स्वातंत्र्य सौख्याभास से ।
फिर प्राप्त गत गौरव तुम्हें हो बल विवेक विकास से ।।
प्रणवीरता के मार्ग में निर्विघ्न शंकाहीन हो ।
सोल्लास विचरो विबुध विभवामोद साधन लीन हो ।।४२

गुरु पाद वंदन जनित आशीर्वाद शम्बल प्राप्ति से ।
विकचास्य कच निर्भय चला होकर विदा सुरजाति से ।।
प्रस्थान कच का होगया विद्यार्थि भावावेश में ।
वाचक ! चलो देखें कहाँ संजीविनी किस देश में ।।४३।।

द्वितीय सर्ग

सालोक अरुणोदय हुआ, जागे विचार नये-नये ।
निज नित्य कर्मों में सभी संलग्न होने लग गये ।।
दानव कुमार सहर्ष आश्रम में सुरार्याचार्य के ।
एकत्र हो पाने लगे उपदेश मंगल कार्य के ।।१।।

शिक्षा-सुधा की वृष्टि-सी करते हुये गुरु ने कहा ।
वाचक चलो ! हम भी सुनें क्या पठन पाठन हो रहा ।।
"है एकमात्र विचार बल आधार आत्मोत्कर्ष का ।
वीरत्व का, धीरत्व का, उत्साहमय संघर्ष का ।।२।।

सब शक्तियों में स्वानुकुल विचार शक्ति वरिष्ठ है ।
प्रत्येक योग क्षेम का साधन यही सविशिष्ट है ।।
विश्वेश का साहाय्य भी रहता उन्हीं के संग है ।
जिनके वरिष्ठ विचार धारा की अनन्त तरंग है ।।३।।

"जीवन-समर में हो यशस्वी विजय श्री पाता वही ।
जिसके विचार बलिष्ठ हैं प्रणवीर कहलाता वही ।।
सब सिद्धियों का सिद्ध साधन है, बलिष्ठ विचार ही ।
दृढ़ धारणा का रूप धारण सिद्ध की करता यही ।।४।।

कर्तव्य पथ के विघ्न भी उनसे सदा भयभीत हैं ।
अविचल अनर्गल विश्व में जिनके विचार विनीत हैं ।।
दुर्बल विचाराकुल हृदय रहता सशंकित सर्वदा ।
अज्ञान मोह विषाद से न विमुक्त हो पाता कदा ।।५।।

"बहते सदा जो जीव नीच विचार धारा में अहो।
उच्चाधिरोहण स्वप्न में भी क्यों उन्हें दुर्लभ न हो॥
क्रमशः अधोगति प्राप्त कर वे व्यथित हो संसार में।
विनिमग्न होते अन्त में जा पतन पारावार में॥६॥

"निज निज विचाराधारके अनुसार ही संसार में।
बनते बिगड़ते जीव रहते, श्रेय है सुविचार में॥
आने न निज मष्तिष्क में दो नीच तुच्छ विचारणा।
पहुंचा सके उन्नतिशिखर पर उच्च-लक्ष्या-धारणा॥७॥

"उत्साह-साहस-शील हो सुविचार बल धारण करो।
विश्वविजय है ध्येय तो अविधेय भय-वारण करो॥
इस भाँति शिक्षण हो रहा था, आगया कच भी वहीं।
वाचक! परीक्षण शत्रु-गुरु का और क्या होगा कहीं॥८॥

कच ने सुरार्याचार्य को सास्टांग अभिवादन किया।
कहते हुये यों आगमन-उद्देश्य, निज परिचय दिया॥
मोहान्धाकूप निमग्न खिन्न विनीन, ज्ञान विहीन हूँ।
आचार्य! मैं पथ-भ्रष्ट भिक्षुक हो रहाअ ति दीन हूँ॥९॥

"विद्यार्थियों के प्रति तुम्हारा प्रेम था जाना हुआ।
आशा प्रवाहाकृष्ट हो मेरा यहाँ आना हुआ॥
गुरुदेव! मम सार्थक मनोरथ हो सकेगा क्या कहो।
भयभीत हूँ, न हृदय कहीं तव द्वेष भावपन्न हो॥१०॥

सन्देह ऐसा है यदपि अपमान तव औदार्य का।
पर क्या करूँ मैं हूँ विपक्षी, पुत्र देवाचार्य का॥
सजीविनी के ज्ञान की है देव! उत्कट कामना।
साफल्य जीवन का यही, मेरी यही आराधना॥११॥

सौजन्य आया सामने, कच की सुनी गद्गद्गिरा।
गुरुता विवश विद्यार्थि को न निराश शुक्र सके फिरा॥
वह कह उठे, न अदेय है विद्यार्थि को कुछ भी यहाँ।
वंचित रहा श्रद्धालु शिष्य विनीत विद्या से कहाँ॥१२॥

सोत्साह तुम भी प्रेम से दनुजात्मजों के संग में।
निर्भय वही संजीविनी की जीवनीय तरंग में॥
प्रारम्भ फिर शिक्षण हुआ संजीविनी के ज्ञान का।
जो है प्रथम अध्याय शुभ स्वातंत्र्य सौख्य विधान का॥१३॥

अवसर न है आलस्य का वाचक चलो हम भी पढ़ें।
पूर्वज विमार्जित ज्ञान पथ में प्रेम से आगे बढ़ें॥
सस्नेह शुक्राचार्य वे सिद्धान्त समझाने लगे।
जिनसे प्रसुप्त प्रमोद सत् चित् भावनाओं का जगे॥१४॥

"निज वीर्य रक्षा की प्रकांड प्रणालिका शुभ साधना।
संजीविनी की मूर्ति है अमरत्व की आराधना॥
जीवन वही जो शुक्र की संधारणा में सक्त है।
शुक्रघ्न की सुखदायु का रहता सदा सूर्यास्त है॥१५॥

न:सत्व को निज आयु का भी स्वत्व ही भाता नहीं।
'उत्साह साहस शौर्यको वह स्वप्न में पाता नहीं॥
इस हेतु कहलाती यही संजीविनी विद्या परा।
जिसकी यश ध्वनि से विमुग्धा सी हुई अचला धरा॥१६॥

जिसका अमोघ प्रयोग लौकिक पारलौकिक सिद्धि का।
है वत्स ! साधन एक मात्र निधान सर्व समृद्धि का॥
इस साधना का ज्ञान ही संजीविनी का ज्ञान है।
जिसके विना गतिमान हो पाता न जीवन-यान है॥१७॥

निर्जीव रक्त परिक्रमण में हीन वीर्यों के यही।
सामर्थ्य शौर्य स्फूर्ति करती है प्रकट अविलम्ब ही॥
निःसत्व मरणासन्न जीर्ण शरीर में जिससे अहो।
प्रज्वलित जीवन ज्योति हो, सजीविनी वह क्यों न हो॥१८॥

उत्साह साहस पूर्ण कायाकल्प जिससे शीघ्र हो।
आह्लाद नव जीवन समर जय का मिले जिससे अहो॥
सजीविनी विद्या वही निर्जीव जन का प्राण है।
इस ब्रह्मचर्य विधान से ही विश्व का कल्याण है॥१६॥

जिसका प्रसिद्ध प्रभाव आज समक्ष है संसार के।
दानव बने विजयी, रहे सेवक सुरेश विहार के॥
यदि शुक्र-सिद्धि अभीष्ट है फिर सिद्ध क्या होता नहीं।
क्या शक्ति की आराधना दौर्बल्य भी देती कहीं॥२०॥

जो उर्द्धरेता हो चुका संजीविनी की सिद्धि से।
उन्नत हुआ जिसका विशाल ललाट ओजो वृद्धि॥
सन्तत तपः श्रम से सुखद अमरत्व उसको प्राप्त है।
विकराल कालातिक्रमण के लिये जो पर्याप्त है॥२१॥

स्वातंत्र्य संयुग सिन्धु में खाता वही गोता नहीं।
दुर्वासना शय्या बना जो मुग्ध हो सोता नहीं॥
विद्यार्थि आश्रम में यहाँ उत्साह से रहते हुये।
संजीविनो साधक बनो उद्योग श्रम सहते हुये॥२२॥

करने लगा अभ्यास कच उत्साह साहस धैर्य से।
आचार्य सेवा में निरत हो भव्य भाव स्थैर्य से॥
संजीविनी की साधना का पूर्ण व्रत होने लगा।
सहपाठियों में भाव ईर्ष्या द्वेष का सहसा जगा॥२३॥

करने लगे दानव कुमार, प्रयत्न कच के नाश का ।
भरने लगे उसके हृदय में भाव विषय विलास का ।।
मृत-प्राय थी कच की दशा, वह विघ्न-बाधा क्रान्त था ।
संजीविनी का श्रान्त साधक दान्त था उद्भ्रान्त था ।।२४।।

श्रद्धालु था वह शिष्य अपने ध्येय को न भुला सका ।
इस हेतु गुरु-कारुण्य से फिर नव्य जीवन पा सका ।।
वाचक ! व्यतीत हुआ समय कुछ और विद्याभ्यास में ।
उद्देश्य कच का हो गया पूरा विवेक-विकास में ।।२५।।

सन्तप्त होकर साधनानल में सुवर्ण-सम प्रभा ।
सम्प्राप्त की उसने बड़ी तेजः समृद्धि सुदुर्लभा ।।
साफल्य भव्य-मनोरथों का दीखने उसको लगा ।
पर शोक अन्तिम बार फिर दुर्भाग्य सोते से जगा ।।२६।।

अस्ताचलोरि सूर्य के प्रणिपात का वह काल था ।
क्षिति से गगन को खिंच रहा सा रश्मियों का जाल था ।।
अनुमान छाया कर रही थी पूर्ण अभिवर्द्धन हुआ ।
था सोचता आतप-जगत में कब न परिवर्तन हुआ ।।२७।।

अरुणत्व अपनाया प्रतीची ने कमल कुल कान्त का ।
वैचित्र्य चित्रण हो रहा था व्योम में दिवसान्त का ।।
जाती हुई निज सद्म को थी कह रही विहगावली ।
ओ श्रान्त यात्री ढूँढ़ले तू शीघ्र विश्राम-स्थली ।।२८।।

विरह व्यथा से हो सशंकित भीरू कोकी ने कहा ।
मधुपान करले ओ भ्रमर अवकाश है थोड़ा रहा ।।
प्रस्थान प्रिय का देख, पद्म न शोक से कुछ कह सके ।
करने लगे लोचन निमीलन वे वियोग न सह सके ।।२९।।

होने प्रतीची में अलक्षित जा रहा दिवसेश था।
विस्तीर्ण आगे हो रही वाचक यही मार्मिक कथा।
प्रिय दर्शना थी देवयानी की मनोहर वाटिका।
सुषमामयी, विधि-चातुरी-रंगस्थली की नाटिका ॥३०॥

रक्ताभ सा सौन्दर्य था हरिताभ द्रुमदल जाल का।
शाखी शिखा पर था सुशोभित मंजुहार प्रवाल का॥
संध्या भ्रमण करते हुये कच भी वहीं पर आ गया।
आचार्य तनया देवयानी ने किया स्वागत नया ॥३१॥

अनुराग-मय कुछ लोचनों में और ही चातुर्य था।
वचनावली में कामिनी के और ही माधुर्य था॥
सत्कार शिष्टाचार में अभिनय दिखा कर प्रेम का।
वृतान्त पूछा शुक्रजा ने पूर्व योग-क्षेम का ॥३२॥

कच—'आशा लता सफला हुई शिक्षा सुधा की वृष्टि से।
मम हृदय पद्म प्रफुल्ल है गुरु की दयामय दृष्टि से॥
निज देश को शुभ दर्शने ! प्रातः मेरा प्रस्थान है।
अन्तिम प्रणाम यही हमारे मिलन का अभिज्ञान है ॥३३॥

प्रस्थान सुन कच का विमुग्धा धीरता न दिखा सकी॥
निज भव्य-भाव-मनोरथों को स्वान्त में न छिपा सकी।
मन्दस्मितानन वह मनोहर मालती - माला लिये।
कहने लगी, कच कंठ का कर पाश से बंधन किये ॥३४॥

"साफल्य श्रम का प्राप्त कर पूरी हुई तव साधना।
अन्तर्निहित ही क्या रहेगी स्वान्त में मम कामना॥
प्रणय स्वरूपा प्रेमिका जय-माल यह स्वीकृत करो।
बँधते हुये पारस्परिक अनुराग गुण में मत डरो ॥३५॥

संजीविनी को प्राप्त कर जाना तुम्हें निज देश है ।
सहधर्मिणी मुझ को बनाना पर अभी प्रिय शेष है ।।
आराधना के ध्येय हो ! केवल तुम्हीं आराध्य हो ।
प्रत्यक्ष हो, फिर क्यों कहो मम साधना दुस्साध्य हो ।।३६।।

सुन देवयानी का वचन निःस्तब्ध सा कच हो गया ।
पाषाण प्रतिमा के सदृश चैतन्य उसका खो गया ।।
उन्मत सा अव्यक्त ध्वनि में यों स्वतः कहने लगा ।
निज लक्ष्य पर लोचन जमा, असहाय सा बहने लगा ।३७।।

"यात्रा न पूरी हो सकी, गन्तव्य पथ का भ्रम हुआ ।
हतभाग्य हा मम साधना का व्यर्थ ही क्या श्रम हुआ ।।
वंचित मनोरथ क्या हुआ साफल्य के अनुमान से ।
क्या यों पतित होना पड़ेगा उच्चतम सोपान से ।।३८। "

"गोविन्द ! मुझ को आत्म बल दो, धैर्य दो उत्साह दो ।
अभयत्व ले जिसमें बहूँ वह सद् विवेक प्रवाह दो ।।
यह विघ्न कैसा आ पड़ा, कुछ भी नहीं जाता कहा ।
गुरुदेव ! मैं निर्दोष हूँ, मम रत्न लूटा जा रहा ।।३९।।

"सुषमा त्रिलोक मनोरमा की, दिव्य है कमनीय है ।
लावण्य का माधुर्य भी अनुपम अनिर्वचनीय है ।।
अनुराग में उसके प्रलोभन का विचित्र प्रभाव है ।
कुछ भी सही, मेरे लिये उसका विषम प्रस्ताव है ।।४०। "

"मैं हो रहा उद्भ्रान्त, मुझको देखता मम ध्येय है ।
वह कह रहा, ओ श्रान्त साधक ! कौन विघ्न अजेय है ।।
स्वातंत्र्य के संग्राम में कर्तव्य अब भी शेष है ।
विश्राम काम विलास का न समय न तेरा वेष है ।।४१।।"

"संजीविनी हा कह रही 'अमरत्व साधक तू कहाँ ।
तू चाहता जिसको न वह सम्प्राप्त हो सकता यहाँ ।।
अन्वेषणा-श्रम व्यर्थ है, वह है न काम विलास में ।
चल, आ दिखाऊँ मैं तुझे अपने विवेक विकास में ।।४२।।

"स्वातंत्र्य पथ निर्विघ्न है, इन्द्रिय विजेता के लिये ।
निर्दिष्ट है न कभी विषय सुख ऊर्द्ध्वरेता के लिये ।।
बहता हुआ कहता समीर 'विलासिता में क्लेष है ।'
गुरु का यही संदेश है, उपदेश है, आदेश है ।।४३।।"

कच को निरुत्तर देखकर फिर देवयानी ने कहा ।
"तुम जानते हृदयेश ! मम जीवन निरर्थक हो रहा ।।
संकोच भय क्या है न तुम को प्रेमिका-सन्ताप का ।
कन्दर्प दग्धा कामिनी के त्याग रूपी पाप का ।।४४।।"

अन्तःकरण का तर्क त्याग, प्रणाम कर कच ने कहा ।
"औचित्य-हीना निन्दनीया की प्रकट तुमने स्पृहा ।।"
निज कामना को त्याग दो, सम्बन्ध न यह सन्बन्ध है ।
यह पुष्पमाला व्याल-सम मेरे लिये निर्गन्ध है ।।४५।।"

"आशा तुम्हारी मैं न पूरी कर सका यह शोक है ।
बस दो विदा, मुझ को प्रतीक्षा कर रहा मम लोक है ।।
जिस दृष्टि से तुम को रहा मैं देखता जिस भाव से ।
वह सर्वदा स्त्री मात्र पर होगा प्रयुक्त स्वभाव से ।।४६।।

"जिसकी अहो विषयाम्बु धारा का प्रचंड प्रवाह है ।
स्वातंत्र्य पथ को काटती रहती सदैव अथाह है ।।
नैराश्य-नीरधि-गामिनी जिसका न संग विधेय है ।
अमरत्व साधक के लिये प्रमदा-नदी वह हेय है ।४७।।

देवयानीः—

"जिसका ग्रहण ही है न उसका त्याग क्या होगा कहो ।
पहिले ग्रहण कर लो मुझे फिर त्याग धारा में बहो ॥
अनुभव ग्रहण के दोष का तुमको हुआ कैसे यहाँ ।
उपभोग में अनुरक्त होने का मिला अवसर कहाँ ? ॥४८॥

कच— "हैं भुक्त प्राणी भोग से, क्या भुक्त होते भोग भी ।
उपभोग सागर का न प्राणी पार पा सकता कभी ॥
जीवन हमारा अल्प पर कर्तव्य का प्राचुर्य है ।
उद्देश्य जिसका एक हो, उसका सफल चातुर्य है ॥४९॥

मम देश देखा चाहता आगे मुझे बढ़ते हुये ।
स्वातंत्र्य के उत्तुंग दुर्गम श्रृंग पर चढ़ते हुये ॥
बस देवि ! दो मुझको विदा, अवकाश है न विवाद का ।
मेरे लिये अति दूर है वह काल प्रणयाह्लाद का ॥५०॥

देवयानीः—

"अनुराग ने ममरूप धारण हा ! किया सन्ताप का ।
फल भोगना तुमको पड़ेगा कामिनी के शाप का ॥
अपमान मम मद में किया जिसके, वही तव शर्मदा ।
विस्मृत विफल संजीविनी विद्या रहेगी सर्वदा ॥५१॥"

मणि के बिना ज्यों व्याल, व्याकुल कच हुआ परिताप से ।
मिलती न उसको सान्त्वना थी मौन से, न विलाप से ॥
कुछ काल वह निर्विण्ण पश्चात्ताप सा करता रहा ।
अस्ताद्रि अंचल ओट में छिपते हुये रवि ने कहा ॥५२॥

"विजयी हुआ संकल्प में न हताश हो प्रणवीर तू ।
आदर्श उज्ज्वल है प्रशस्त 'अभीत' हो न अधीर तू ॥
सौन्दर्य से यदि शुक्रजा के मुग्ध तू होता कहीं ।
उसके विलास प्रलोभनों का त्याग कर पाता नहीं ॥५३॥

तो व्यर्थ थी तव साधना, इसमें हृदय में हर्ष है।
वह था पतन कुछ और, यह कुछ और ही उत्कर्ष है।।
अति दूर है न अभीष्ट सिद्धि, प्रयत्न कर आगे बढ़ो।
विश्रान्त हो यदि आज, प्रातः फिर उदयगिरि पर चढ़ो ।।४४।।

यों अस्त होते सूर्य ने मानो समाश्वासन दिया।
ले श्वास दीर्घ ससोक कच ने धैर्य को धारण किया ।।
वाचक ! विचित्र विषय रहा विद्यार्थि विद्याहीन है।
पर है परीक्षा में सफल, निज ध्येय में तल्लीन है ।।५५।।

* इति द्वितीय सर्ग *

———०———

तृतीय सर्ग

कच रिक्त-हस्त, हताश आया देश में हो उन्मना ।
फैली सकल सुरलोक में, आलोक सी यह सूचना ॥
तन्मय हुआ सुर संघ फिर निज निज विचार विमर्श में ।
साफल्य कैसे प्राप्त हो स्वातंत्र्य के संघर्ष में ॥१॥

एकत्र सुर समुदाय से सदुपाय यह विधि ने कहा ।
"प्रणवीर हो आगे बढ़ो, उद्योग कब निष्फल रहा ॥
दुर्भाग्य वश संजीविनी की पूर्ण प्राप्ति हुई नहीं ।
पर शक्ति संचय ज्ञेय है सिद्धान्त उसका सब कहीं ॥२॥

"प्रत्येक जग के कार्य का कारण हमारी शक्ति है ।
अनिवार्य जिसकी प्राप्ति में पारस्परिक अविभक्ति है ॥
निःशक्त की सत्ता नहीं, के सदृश रहती सर्वदा ।
अस्तित्व प्राणी मात्र का है शक्ति पर निर्भर सदा ॥३॥"

"निज निज प्रसुप्ता शक्ति को एकाग्र हो जागृत करो ।
निर्बाध चिन्तन से अलक्षित लक्ष्य को आवृत करो ॥
भावित करो अन्तःकरण निज, शक्ति के आभास से ।
दौर्बल्य दो मन का मिटा सामर्थ्य भावोल्लास से ॥४॥

"चिन्तन अहर्निश शक्ति का हो, शक्ति-मय संकल्प हो ।
नैराश्य का दौर्बल्य का कुछ भी न भाव विकल्प हो ॥
ध्याता बनेगा ध्येय जब संकल्प के प्राबल्य से ।
तब स्वान्त होगा शक्ति संकुल, साधना-साफल्य से ॥५॥

"चेत: प्रवृत्ति विलीन होगी शक्ति-चिन्तन में जभी ।
सौलभ्य होगा शक्ति के सारुप्य का उसको तभी ।।
बहने लगेगी शक्ति की आभा विचार प्रवाह में ।
वैचित्र्य-चित्रण हो चलेगा और ही उत्साह में ।।६।।"

"निज-निज अबाध-विचार-धारा को मिलादो एक में ।
पारस्परिक सौहार्द को भूलो न चित्तोद्रेक में ।।
विद्युतप्रभा घनमण्डलों में हो समाकर्षित यथा ।
अन्त:करण की शक्तियाँ एकत्र निज करलो तथा ।।७।।"

"एकत्र होकर शक्ति धारायें विभिन्न विचार की ।
प्रतिमा बनेंगी तेज पुंज अभूतपूर्वऽऽकार की ।।
अथवा कहो, विच्छिन्न-शक्ति-करौघ सुर समुदाय का ।
होगा प्रकट, साकार बन साफल्य इव सदुपाय का ।।८।।"

"इस भांति होगी शक्ति की यह सम्मिलित आराधना ।
निज-निज विलग्ना शक्ति के एकीकरण की साधना ।।
परमाणु संचय से हुआ निर्मित अचल संसार में ।
संचित हुये सीकर यथा एकत्र पारावार में ।।९।।

"देखो मिलाकर एक में निज-निज सशक्त विचारणा ।"
साक्षात् होगा शक्ति का, दृढ़ हो तुम्हारी धारणा ।।
जो व्याप्त है तव मानसों में भिन्न-भिन्न प्रकार से ।
आराधना उसकी करो सम्मिलित एक विचार से ।।१०।।

"जब शक्ति होगी स्वानुकूल, अलभ्य क्या होगा कहो ।
स्वातन्त्र्य के संघर्ष में सोत्साह सब तत्पर रहो ।।
सदुपाय्य निज कर्तव्य है, नि:स्पृह रहो परिणाम में,
नैष्फल्य का अनुभव नहीं इससे कभी होगा हमें ।।११।।

सहमत हुए दनुजारि सब विधि के विवेक विचार से।
नैराश्य उनका मिट चला उत्साह के संचार से॥
एकाग्र हो करने लगे सब शक्ति की आराधना।
आओ करें वाचक समीक्षा, कौन थी वह साधना॥१२॥

संकल्प उनका एक था प्रत्येक मानस में भरा।
वह शक्ति सत्ता है हमारी, व्याप्त है जिससे धरा॥"
एकाग्र थे वे एकता में, एक उनका ध्येय था।
यह शक्ति गौरव-गान ही दिव्य स्वरों में गेय था॥१३॥

"जगदम्बिके ! तव रूप हैं रामा सकल संसार की।
विजये ! तुम्हारा भेद हैं, विद्या समस्त प्रकार की॥
हैं सिद्धियाँ छाया तुम्हारी, शौर्य तव तेजः प्रभा।
आनन्द तव मृदु हास है, तब दृष्टि है धृति दुर्लभा॥१४॥

बहने लगी सुविचार शक्ति स्पष्ट हो उत्साह में।"
हृदय-स्फुरण के साथ ही निस्तेज रक्त प्रवाह में॥
ओजस्विता से पूर्ण शुचि सर्वांग उनका हो गया।
आभास शक्ति विकास का प्रत्यंग से छिटका नया॥१५॥

तेजश्छटा वह सर्व-देव-शरीरजा एकत्र हो।
पार्थक्य को तजकर हुई साकार अत्यद्भुत अहो॥
जिस मूर्ति की थी कह रही तेजस्विता प्रति अंग की।
संकल्प शक्ति अजेय एकीकृत हुई सुर-संघ की॥१६॥

वीभत्सता की राशि को सौन्दर्य ने आवृत किया।
रौद्रत्व ने लावण्य को अथवा बना नीरस दिया॥
उस मूर्ति को अवलोक कर कुछ भी न था जाता कहा।
वह दिव्य थी तेजश्छटा त्रिदिवेश शान्ति सुधा वहा॥१७॥

अवलोक कर जगदम्बिका को देवदल हर्षित हुआ।
दनुजेश का विज्ञान शुभ संकल्प अपकर्षित हुआ॥
निष्क्रिय हुये विबुधारि गिर दुर्वासना के गर्त में।
सद्वृत्तियाँ सब भूल बैठे पड़ विमोहावर्त में॥१८॥

नारी स्वरूपा शक्ति को विषयेषणा में लीन हो।
वामा बनाने के लिये उद्यत हुये मतिहीन हो॥
मदमान में संजीविनी-सिद्धान्त सब विस्मृत हुआ।
संग्राम में विबुधारि दल फिर काल कवली कृत हुआ॥१९॥

कुछ शक्ति-कौशल का प्रदर्शन शक्ति ने रण में किया।
असुरेश का संहार फिर दिव्यास्त्र से क्षण में किया॥
मारे गये वे चंड-मुण्ड निशुम्भ-शुम्भ महाबली।
सुर संघ के जयकार से गुंजित हुई समरस्थली॥२०॥

जिनके पराक्रम शौर्य से शंकित सुरासुर होगये।
वे शक्ति से संघर्ष कर अस्तित्व अपना खोगये॥
सु लोक में फिर आधिपत्य हुआ 'अभीत' सुरेश का।
आतंक जगती से मिटा, मदमान रत दनुजेश का॥२१॥

यश गान देवों ने किया मन में प्रमोद अपार था।
नभ में अलक्षित होगया अवतीर्ण जो आकार था॥
है शक्ति की साकारता, वाचक! रहस्मयी कथा।
असमर्थ हैं हम समझने में आज जिसको सर्वथा॥२२॥

हम पूजते हैं आज भी उस शक्ति को सुविचार से।
विख्यात जिसके नाम रूप हुये विभिन्न प्रकार से॥
निःशक्त हैं पर शोक हा! असमर्थता जाती नहीं।
आराधना में शक्ति की भी, शक्ति दिखलाती नहीं॥२३॥

प्रचलित हमारी आज भी है ग्राम-पूजा को प्रथा।
अनभिज्ञ से पर हो रहे सिद्धान्त से हम सर्वथा।।
वह वार्षिकी पूजा शरद् ऋतु की न सार्थक आज है।
उद्देश्य को बैठा भुला विगतानुगतिक समाज है ।।२४।।

वह ग्राम पूजा और थी कुछ और ही थी साधना।
करते रहे पूर्वज वही देवानुसृत, आराधना।
एकत्र होते एकता के भाव में ग्रामीण थे।
पारस्परिक सहयोग में मतभेद हीन प्रवीण थे ।।२५।।

निज-निज पवित्र विचार धारा को मिलाकर एक में।
तल्लीन होते शक्ति चिन्तन के 'अभीत' विवेक में ।।
आह्वान पूजन एक स्वर में शक्ति का होता जभी।
वे भिन्न भिन्न अनेक मानस एक हो जाते सभी ।।२६।।

संकल्प सब का एक होता, एक होता लक्ष्य था।
सांफल्प, शक्ति उपासना का ऐक्य में प्रत्यक्ष था।।
वाचक ! कहाँ अवशेष है उस काल की वह भावना।
करना हमें है आज फिर वह शक्ति की आराधना ।।२७।।

तजकर विषय यह दूसरा आगे चली अपनी कथा।
पीयूष पाने के लिये सुरसंघ ने सागर मथा।।
वाचक ! चलो देखें कहाँ है मृत्यु क्या ? अमरत्व क्या ?
भय दूर हो जिससे मरण का वह मधुर प्रिय तत्व क्या।२८

कुछ काल बीता, दानवों ने संगठन फिरसे किया।
स्वातन्त्र्य-सत्ता को पराक्रम शौर्य से अपना लिया।।
संघर्ष दानव-देव-दल का वह पुनर्जीवित हुआ।
सोती हुई रण-रौद्रता का नेत्र उन्मीलित हुआ ।।२९।।

आतंक छाया दानवों का विश्व में उस काल था।
भय त्रस्त व्याकुल हो गया सवरूथिनी सुरपाल था॥
अवलोक देवों का पराभव, विष्णु ने उनसे कहा।
"परिणाम में शुभ-शीलता रहती सदैव सुखा वहा॥३०॥"

यदि दुःख शोक जरा मरण से मुक्त है होना तुम्हें।
सामर्थ्य सौख्य समृद्धि से संयुक्त है होना तुम्हें॥
तो सब करो मिल कर मथन सोत्साह रत्नागार का।
पीयूष रत्न तुम्हें मिलेगा सत्व पारावार का॥३१॥"

अविलम्ब ही पालन हुआ गोविंद के आदेश का।
मंदर मथानी ली बना, गुण बन गया नागेश का॥
सलिलेश मथने के लिये सुर संघ तत्पर हो गया।
अवलोक कर प्राचुर्य श्रम का शौर्य साहस खोगया॥३२॥

वाचक! निराशा का हुआ अनुभव स्वयं विबुधेश को।
औदार्य दिखला कर कहा उसने बुला दनुजेश को॥
"यह हो रहा सागर-मथन पीयूष पाने के लिये।
सहयोग दो, इस कार्य में साफल्य लाने के लिये॥३३॥"

"होगी सफलता यदि हमें तो अंश भागी हो सभी।
आओ जुटो इस कार्य में स्थैर्यानुरागी हो सभी॥
बन रज्जु मंदर शैत्र में लिपटा हुआ नागेश है।
एकत्र हो उत्साह से मथना हमें सलिलेश है॥३४॥"

"पारस्परिक संघर्ष-सागर का मथन करते रहे।
हम स्वान्त में प्रतिद्वन्द्विता की भावना भरते रहे॥
बढ़ते रहे चिरकाल से आगे रणांगण में हमीं।
निज निज प्रभुत्व महीध्र पर चढ़ते रहे क्षण में हमीं॥३५॥"

"पर आज ईर्ष्या द्वेष तज सौहार्द भावापन्न हो।
पारस्परिक सहयोगिता की शान्त धारा में बहो॥
सौलभ्य होगा सिन्धु मथनोद्योग से जिस सत्व का।
माधुर्य है पारस्परिक सौहार्द ही उस तत्व का॥३६॥

"आओ सुधा की प्राप्ति से ही पूर्व उस माधुर्य का।
हम सब रसास्वादन करें अवलम्ब कर चातुर्य का॥
विबुधारियों ने जब सुना क्या कार्य होने जा रहा।
पीयूष पीने के लिये जागृत हुई उनकी स्पृहा॥३७॥

दानव मिले सुरसंघ से विस्मृत हुई रिपु भावना।
अवलोक अवसर ऐक्य का, की सम्मिलित शुभ साधना॥
अहि पुच्छ पकड़ा एक दल ने, एक ने मस्तक लिया।
एकाग्र हो उत्साह से सागर मथन में श्रम किया॥३८॥

था चाहता प्रत्येक दल पीयूष हमको प्राप्त हो।
एकाधिपत्य मिले हमें रिपु का प्रभुत्व समाप्त हो॥
पर एक हो पारस्परिक सौहार्द दिखलाते हुये।
सब सम्मिलित श्रम कर रहे थे ऐक्य गुण गाते हुये। ३९॥

सन्तुष्ट हृष्ट हुये अलौकिक रत्न पाकर भी न वे।
भीषण गरल की भीति से न हताश साहस हीन वे॥
पाकर सुधा ही वे हुये विश्रान्त अध्यवसाय से।
उद्देश्य जब तक हो न पूरा लाभ क्या सदुपाय से॥४०॥

धैर्यावलम्बी धीरजन निज ध्येय को न विसारते।
अतिरिक्त निश्चित लक्ष्य के कुछ भी कभी न निहारते॥
गन्तव्य-पथ में विघ्न-बाधायें प्रलोभन देख भी।
होते विमुख कर्तव्य से न हताश मोहित वे कभी॥४१॥

वाचक ! सभी को है सुधा की कामना वह आज भी ।
स्वातंत्र्य-सत्ता पा गया है भारतीय समाज भी ॥
वह ऐक्य-पथ, प्रिय आज है कितना हमें कितना कहो ।
क्या चाहते हम हैं नहीं बनना सभी नेता अहो ॥४२॥

स्वाधीनता - संघर्ष - सागर का मथन करते हुये ।
हम बढ़ रहे आगे अहो सौहार्द से डरते हुये ॥
प्रचलित हमारे मध्य में हा ! आज पार्टीवाद है ।
पारस्परिक विद्वेषिता का ही प्रसाद विषाद है ॥४३॥

पाठक ! प्रथित हैं रत्न जो निकले अलौकिक सिन्धु से ।
अपनी कथा आगे चली पीयूष ही प्रिय है उसे ॥
सागर मथन करते हुये उद्योग सर्वोपरि हुआ ।
लेकर सुधा-घट पाणि में तब प्रकट धन्वन्तरि हुआ ॥४४॥

आदेश मंगलमय उन्हें देते हुये उसने कहा ।
"पीयूष की प्रियता तुम्हें होगी अतीव सुखावहा ॥
अमरत्व का, अजरत्व का साधन समृद्धि निधान है ।
पीयूष परमौषध तुम्हारा ब्रह्मचर्य विधान है ॥४५॥

विबुधारि कौशल से सुधा घट ले चले अविलम्ब ही ।
सुरसंघ की वह शोचनीय दशा न थी जाती कही ॥
अवकाश था न उन्हें सुधा-घट छीन लेने के लिये ।
सहमत न थे दानव हुये देवांश देने के लिये ॥४६॥

पर कर सके वितरण परस्पर वे न प्राप्त पदार्थ का ।
होने अपव्यय फिर लगा उनके अमित पुरुषार्थ का ॥
वादाविवाद निमग्न थे उनमें न धैर्य विवेक था ।
'पहिले करूँ मैं पान' यों कहता दनुज प्रत्येक था ॥४७॥

अवलोक सुर शोकार्त श्री हरि ने समाश्वासन दिया।
फिर शीघ्र विश्व-विमोहिनी का रूप धारण कर लिया॥
मन्दस्मितानन मोहनी ने दानवों से जा कहा।
लाओ पिलाऊँ मैं सुधा निज पाणि से श्रमतापहा॥४८॥

देखा मनोरम रूप असुरों का हृदय अपहृत हुआ।
आदेश धान्वन्तर उन्हें उस काल वह विस्मृत हुआ॥
सोचा 'प्रथम तो यह सुदर्लभ था जलधि का सार ही।
सौभाग्य से प्रियदर्शना की भी छटा दिखला रही॥४९॥

कर कंज से अनुरागिणी के अमृत का माधुर्य भी।
कुछ और ही हमको मिलेगा मोद का प्राचुर्य भी॥
फिर मोहनी ने घट सुधा का मुग्ध असुरों से लिया।
चातुर्य से उनको पिलाकर वारुणी, वंचित किया॥५०॥

पीयूष देवों को मिला, पीकर अमर वे हो गये।
सामर्थ्य साहस शौर्य के जागे विचार नये नये॥
संग्राम में सत्वर पराजित दानवों को कर दिया।
त्रैलोक्य में सुर संघ ने फिर आधिपत्य जमा लिया॥५१॥

वाचक ! कथा यह कर रही "उद्योग से जाता जिया।
पाथोधि मंथन श्रमित हस्तों से अमृत जाता पिया॥
उत्साह साहस धैर्य से विबुधारियों ने श्रम किया।
पर कामिनी के मोह में, पीयूष पाकर खो दिया॥५२॥

* इति तृतीय सर्ग *

——o——

चतुर्थ सर्ग

बसुधा-हृदय उत्पन्न ब्रह्मावर्त था विभु ने किया।
अक्षय प्रगति का विश्व को जिसने सदा परिचय दिया।।
सम्प्राप्त जिसको आदि सृष्टि विकास की क्षमता हुई।
प्रसरित जहाँ से विश्व में सर्वत्र मानवता हुई ।।१।।

सब मानवों ने विश्व के, सम्मान भारत का किया।
निज मानवीय चरित्र का उपदेश अग्रज से लिया।।
सांस्कृतिक-गौरव, सभ्यता का, सत्य ब्रह्म विचार का।
आदर्श भारत ने दिखाया विश्व को उपकार का ।।२।।

वाचक ! कथा उस गौरव-स्मृति-ह्लादिनी में वह चली।
आओ बिलोकें वह पुरातन काल की चित्रावली।।
पर यों न कह देना कहीं "यह है निपट कवि कल्पना।"
करना न है कुछ भी हमें अत्युक्ति की अभिव्यंजना ।।३।।

जब आधिपत्य जमा त्रिलोकी में लिया त्रिदिवेश ने।
सुख शान्ति का संदेश भेजा विश्व में इस देश ने।।
सर्वत्र दैवी सम्पदा का ही प्रभुत्व प्रभाव था।
उस काल लुप्ताकार सा निःसत्व आसुर भाव था ।।४।।

निर्विघ्नता को प्राप्त कर अवसर मिला उत्कर्ष का।
संसार में विश्रुत हुआ विज्ञान भारतवर्ष का।
उस काल उन्नति के शिखर पर यह हमारा देश था।
शासक जगत्याकाश का भारत प्रताप दिनेश था ।।५।।

वह था हमारा स्वर्ण-युग प्रत्येक जन निस्तन्द्र था।
पीयूष वर्षा कर रहा कुछ और ही तब चन्द्र था॥
आनन्द लेकर बह रहा उस काल शुद्ध समीर था।
समयानुकूल पयोद से सम्प्राप्त होता नीर था ॥६॥

नभ में प्रकाशित हो रही थी और ही तारावली।
उस काल की गाती रही कुछ और ही कवि मंडली॥
कुछ और ही अभिनय प्रकृति का था यहाँ पर हो रहा।
रंगस्थली सी राजती उस काल थी सर्वंसहा ॥७॥

सौन्दर्य शोभा काननों की वह अलौकिक है कहाँ?
आनन्द योगी तापसों को प्राप्त था होता जहाँ॥
सलिलाशयों में गा रही कुछ और ही भ्रमरावली।
वाचक! मनोरम हास्य भी दिखला रही सुमनावली ॥८॥

सब शुद्ध सलिला थी नदी इस देश की कलनादिनी।
सर्वत्र धारा बह रही थी शान्ति की आह्लादिनी॥
यदि धर्म पर आपत्ति आ जाती "अभीत" यदाकदा।
अवतीर्ण दिव्य विभूतियाँ इस देश में होतीं तदा ॥९॥

वह काल वैदिक काल था पाखंड था न समाज में।
सिद्धान्तवादी देश था सत्यावलम्बी राज में।
संकल्प बल की थी महत्ता, ज्ञान में आह्लाद था।
निष्फल नहीं होता कभी अभिशाप, आशीर्वाद था ॥१०॥

पारस्परिक सौहार्द की प्रचलित हुई ऐसी प्रथा।
सब प्राणियों को आत्मवत् अवलोकना कर्त्तव्य था॥
समृद्धि-शाली देश में सर्वत्र सौख्य सुराज था।
सौजन्यशील, परोपकारी, कर्मवीर समाज था ॥११॥

यह देश केवल एक भारत देश है संसार में
जिसमें सके हो ब्रह्मचारी लीन ब्रह्म विचार में।
जीवन-प्रथम-युग, शक्ति संचय में बिताते थे सभी
कर बिन्दु-धारण अंक इव अभिवृद्धि पाते थे सभी ।।१२

गुरु के लिये सर्वस्व अर्पण शिष्य करते थे तदा।
आचार्य - आदेशानुशीलन - शील रहते सर्वदा ।।
पर ब्रह्मचर्य - विभंगकारी मान्य आदेश न हुआ।
उत्पन्न मन में भीष्म के संकोच का लेश न हुआ ।।१३।।

आदर्श पातिव्रत्य का अन्यत्र भी क्या है कहीं
पति प्रेम का ललना रुचिर चित्रण कहाँ करती रहीं।
वाचक ! अजेय सतीत्व शक्ति तदा हमारे देश की
आतिथ्य सेवा कर सकी ब्रह्मा महेश रमेश की ।।१४

सन्तान पाने के लिये कामोपभोगी थे गृही।
अभिवृद्धि के ही अर्थ बीजादान करती थी मही ।।
गृह देवियों का हो रहा सर्वत्र समुचित मान था।
प्रत्येक, निज कर्त्तव्य-निष्ठ कुटुम्ब स्वर्ग समान था ।।१५।।

पक्वान्न भोजन के लिये इस देश में बिकता न था
प्रत्येक गृह में श्रान्त पथिकों के लिये जलपान था
सत्कार सेवा के लिये जिस दिन अतिथि मिलता न था
होती गृही के चित्त में थी उस दिवस मार्मिक व्यथा ।।१६

तब भोजनालय में प्रथम करता अनल घृत पान था।
फिर देश भारत क्या कहे कितना धनी बलबान था।
गो देश का बल था पराक्रम शौर्य था, धन-धान्य था।
गुण-कर्म शील स्वभाव भारत का जगत में मान्य था ।।१७।।

संकल्प कर दम्पति जहाँ विषयैषणा के त्याग का।
करते रहे आनन्द अनुभव ज्ञान योग विराग का॥
उस काल के वह शान्त वैखानस कुटीर गये कहाँ।
होता रहा मनसिज विजय का था रुचिर अभिनय जहाँ॥१८॥

ले दण्ड कर में जीतकर निज शत्रु दल निर्भीक हो।
सत्पथ प्रदर्शन के लिए ऐश्वर्य के सुप्रतीक हो॥
कर प्रथित सर्व मनोरमा समदर्शिता प्रियतावहा।
विश्वानुशासक थे नृपति यति वा न कुछ जाता कहा॥१९॥

अध्यात्म विद्या में रहा यति वर्ग का अनुराग था।
सन्यस्त भावों में निहित कुछ और ही तब त्याग था॥
आनन्द जीवन मुक्ति का उपलब्ध था होता हमें।
बहते हुए जिनके सुखद ज्ञानोपदेश प्रवाह में॥२०॥

इतिश्री जहाँ विज्ञान की, की आधुनिक संसार ने।
प्रारम्भ था माना उसे निज भारतीय विचार ने॥
ब्रह्मर्षियों का अप्रमेय त्रिकालदर्शी ज्ञान था।
तव काल के जय का रहा कर देश अनुसंधान था॥२१॥

उस काल के राजर्षियों का दान में अनुराग था।
वलि का, दधीचि नरेश का, शिवि का अलौकिक त्याग था।
चरितार्थ करने के लिए निज स्वप्न के भी दान को।
सत्यावलम्बी-नृप श्वपच-सेवक बना तज मान को॥२२॥

वे चक्रवर्ती विश्व विजयी भारतीय नरेश थे।
औदार्य शिक्षा पा रहे जिनसे जगत के देश थे॥
नृप-क्षत्र-चामर पर प्रजा का ही सदा अधिकार था।
जनतंत्र था, सब के लिए सौजन्य सद्-व्यवहार था॥२३॥

नृप थे दयालु परन्तु शासन का प्रबल आतंक था।
अविधेय रहता न्याय से तव सर्व दैव सशंक था॥
क्लान्तासती पथगामिनी निद्रावती का चीर भी।
करता नहीं था अव्यवस्थित वेगशील समीर भी॥२४॥

शतगुण उसे समृद्ध करने के लिए ही नृप अहा।
राजस्व लेते थे प्रजा से, सूर्य ज्यों रस ले रहा॥
उस काल का वह राम-राज्य प्रसिद्ध है इतिहास में।
जिसको स्मरण कर आज भी है शान्ति सुख मिलता हमें॥२५

चिरकाल वह आनन्द अक्षय भारतीय बना रहा।
घृत दुग्ध की सरिता यहाँ बहती रहीं श्रमतापहा॥
वे मृत्यु कष्ट विनाशिनी सामर्थ्य–शौर्य–सुख–प्रदा।
होती रहीं उपलब्ध भारत भूमिजा भेषज तदा॥२६॥

पर आज वह उस काल का वाचक ! कहाँ आह्लाद है।
समृद्धि सुख बल शौर्य साहस स्वप्न सा कुछ याद है॥
सम्प्रति कवित्व विनोद मोद विलाप सा यह हो चला।
अपहृत विदित ऐश्वर्य कर किसको न शोक हुआ भला॥२७॥

हम कौन थे ! क्या हो रहे, है क्या विधान भविष्य का।
आसन जगद्गुरू ने लिया हा ! शोक सादर शिष्य का॥
निज संस्कृति वा सभ्यता में भी हमें न प्रतीति है॥
निज पूर्वजों की निधि ग्रहण करते हुए भी भीति है॥२८॥

प्राचीनता की दिव्य धारा में प्रतीति न वह सकी।
नैतिक न सामाजिक न धार्मिक मति सुरक्षित रह सकी॥
हैं पतित कितने उच्चपद से हम न कुछ जाता कहा।
उतने सुदूर स्थान तक अब दृष्टि भी जाती न हा॥२९॥

होकर विवश हम देखते जो काल का नर्तन हुआ।
कहना यही पड़ता हमें, हा शोक ! परिवर्तन हुआ ॥
जिसने निपट चौपट विभव-वट कर दिया सहमूल है।
सोचो, न हम से ही गयी हो क्या ? कहो वह भूल है ॥३०

वाचक विलोको चित्र यह कैसे पतन अपना हुआ।
विच्छिन्न भिन्न हुआ मनोरम दिव्य धाम बना हुआ ॥
प्रलयक्षपा सी आ घिरी घटना अतीव भयावहा।
जिससे हमारा आज तक ऐश्वर्य तमसावृत रहा ॥३१॥

प्राचीन भारत ही सफल नेतृत्व जग का कर सका।
जिसने पढ़ाया पाठ सब को विश्व के बन्धुत्व का ॥
पर शोक हा ! हतभाग्य कुछ कर्त्तव्य ऐसा आ पड़ा।
जिससे सहोदर बन्धु को भी बन्धु से लड़ना पड़ा ॥३२॥

अधिकार अपने छोड़ना स्वातन्त्रय का अपमान है।
स्वाश्रित निजोन्नति को बनाना राजकीय विधान है ॥
यह आत्म निर्णय तत्व ही उस युद्ध का कारण हुआ।
अधिकार रक्षा के लिये जो आत्म संहारण हुआ ॥३३॥

हठशील, शठ, दुर्वृत्त किसका हो सके न सुधार ही।
उस बन्धु के प्रति भी उचित है दण्ड का उपचार ही ॥
सिद्धान्त यह जिस युद्ध में कर्त्तव्य बन व्यवहृत हुआ।
श्री कृष्ण के नेतृत्व में वह था महाभारत हुआ ॥३४॥

होते प्रवृत्त न पार्थ जो मोहान्ध हो संग्राम में।
आदर्श दुष्टों के निधन का फिर कहाँ मिलता हमें ॥
लेता न कोई नाम भी अपकार के प्रतिकार का।
होता विनाश कभी नहीं अन्याय अत्याचार का ॥३५॥

यदि पार्थ जैसे वीरवर सामर्थ्य शौर्य निधान भी।
अधिकार खोकर बैठ रहते भूल गीता ज्ञान भी॥
स्वाधीनता का कौन फिर सम्मान करता हर्ष से।
आनन्द फिर मिलता किसे स्वच्छन्द आत्मोत्कर्ष से ॥३६॥

आहत, व्यथित, पीड़ित पराजित मौन हो जाते सभी।
आदर निरादर में न हर्ष विषाद वे पाते कभी॥
यों ही दलित होता हृदय फिर न्याय सत्य विधान का।
साधन कहाता शाठ्य ही ऐश्वर्य अनुसंधान का ॥३७॥

वाचक ! विवादास्पद विषय है क्या कहें कैसा हुआ।
अच्छा हुआ अथवा बुरा जो कुछ हुआ जैसा हुआ॥
कहना पड़ा अनुचित उचित वा ह्रास हम सब का हुआ।
कर्त्तव्य के आकाश में सूर्यास्त वैभव का हुआ ॥३८॥

स्वाहा हुआ हा हा इसी समराग्नि में सर्वस्व ही।
केवल रहा स्वातन्त्र्य का भग्नावशेष बना वही॥
सोत्साह जिसको देखते सुनते हुए हम आज भी।
हैं चाहते पुनरागमन प्राचीन गौरव का सभी ॥३९॥

जिस ज्ञान के उपदेश से प्रज्ज्वलित रण-पावक हुआ।
निज बन्धु का प्राणान्त कारी बन्धु का शावक हुआ।
कलिकाल का न गया कभी जिसके समीर समीप है
वह आज गीता नाम से कर्त्तव्य पथ का दीप है ॥४०॥

बन कर्म योगी पार्थ ने पायी विजय जिस ज्ञान से।
वह दिव्य है, परिपूर्ण है स्वातन्त्र्य सौख्य विधान से॥
उस काल का वह दृश्य मार्मिक वाचको देखो चलो।
घनश्याम की उपदेश वर्षा से हृदय निज सींच लो ॥४१॥

वेदान्त - शास्त्र - समुद्र-मन्थनोद्‍भूत - प्रिय -गीता-सुधा-
का क्या न होगा ढूँढ़ना संक्षिप्त सार हमें मुधा।
कुछ विन्दुओं का पर हमारी गीतिका कवि सम्मता।
है चाहती करना रसास्वादन प्रसंग वशंगता ।।४२।।

निज-निज विजय की कामना में शौर्य भावोत्कर्ष से।
शूरावली कुरुक्षेत्र में एकत्र थी अति हर्ष से।।
वन सारथी घँनश्याम ले आये वहीं रथ पार्थ का।
अवमान ममता ने किया वाचक ! जहाँ पुरुषार्थ का ।।४३।।

कौन्तेय ने देखा रणोत्सुक बान्धवों को क्षेत्र में।
होने तरंगित लग गया कारुण्य उसके नेत्र में।।
प्रतिकार भावों का न कुछ भी चिन्ह मानस में रहा।
उत्साह तज रण कार्य का गोविन्द से उसने कहा ।।४४।।

"प्रिय बान्धवों का कर निधन क्या राज्य धन आदेय है।
निज अंश के अधिकार में आसक्ति किंवा हेय है।।
कर्त्तव्य सम्प्रति क्या सखे ! मम है न मुझको ज्ञात है।
प्रिय पूज्य स्वजनों पर किया जाता न शस्त्राघात है।।४५।।

"प्राचुर्य है रणकार्य में माधव ! कुलक्षय दोष का।
अवलम्ब श्रेयस्कर न होगा क्या सखे सन्तोष का।।
कौटिल्य प्रेमी यदि विपक्षी हैं रणोद्यत आज भी।
उनके सदृश ही क्या हमें भी चाहिए बनना कभी ।।४६।।"

"हिंसाजनित समृद्धि का उपभोग करना पाप है।
जिसके स्मरण से चित्त में होता प्रचुर सन्ताप है।
अपनी विजय होगी न वा यह भी भविष्याधीन है।
फिर पंक में पड़ना अभी, माधव ! विवेक विहीन है ।।४७।।"

श्रीकृष्ण :—"संशय, अवद्य-असामयिक तुमको कहाँ से हो गया।
ओ ! वीरवर ! जिससे तुम्हारा शौर्य सहसा खो गया ॥
किसके मरण की व्यर्थ आशका हुई तुमको अहो ;
किस कल्पना में मग्न हो कर्त्तव्य त्याग रहे कहो ॥४८॥"

"उद्भव अवस्थान्तर-निधन सदैव होता सदैव शरीर का।
संघात है यह पार्थ ! क्षिति जल व्योम वन्हि समीर का ॥
मरता न जीवात्मा कभी होता न उसका नाश है।
निर्द्वन्द्व निर्भय नित्य निर्मल निर्विकार प्रकाश है ॥४९॥"

"उत्पत्ति है जिसकी हुई उसका मरण अनिवार्य है।
यह शोक कौरव-दल-निधन विषयक सखे ! परिहार्य है ॥
हतदेह में आत्मा निहित होता नहीं अर्जुन कभी।
निधनार्थ उसके हैं निरर्थक विश्व के साधन सभी ॥५०॥

"हम नव वसन करते ग्रहण तज जीर्ण वस्त्रों को यथा।
तज जीर्ण वपु पाता रुचिर नव देह है देही तथा ॥
पापाग्नि दग्ध शरीर हैं कौरव चमू के सर्वथा।
उनके निधन का हेतु बनने में तुम्हें कैसी व्यथा ॥५१॥"

"होते हुए भी अज अनादि अनन्त भूताधीश भी।
मैं जन्म लेता हूँ व्यवस्था धर्म की घटती जभी ॥
धारण किया सुकृती जनों के रक्षणार्थ शरीर है।
नाशार्थ दुष्ट समूह के मैंने किया प्रण वीर ! है ॥५२॥"

"तुम भी करो उत्साह से पालन सखे ! निज धर्म का।
दो कौरवों को दण्ड उनके पापमय दुष्कर्म का ॥
वैराग्य चर्चा वा अहिंसा धर्म का कालोचित न है।
ओ ! वीरवर ! क्या आज तव रण-विमुखता गर्हित न है ॥५३॥

"जिस भांति जल की कामना जितनी जिसे होती जहाँ।
करता ग्रहण सरसे सलिल उस भांति वह उतना वहाँ ।।
कर्त्तव्य-जल वेदान्त-वारिधि में सखेऽपरिमेय है।
सम्भव न सर्वादान है, निज धर्म में ही श्रेय है ।।५४।।"

"हिंसा न यह रण कार्य है न सखे स्वजन संहार का।
देना तुम्हें है दुष्ट दल को दण्ड अत्याचार का ।।
अवलोक तुमको रण-विमुख सोचो कहेगा कौन यों।
अर्जुन गया रण कार्य में हो ज्ञान योगी मौन यों ।।५५।।"

"प्रत्युत करेगा वैरिदल उपहास सोचो तो भला।
अर्जुन वृहन्नल आज वन फिर युद्ध से छिपने चला ।।
यह कर सकोगे यों सहन शठ वाक्य तुम वन दीन क्या।
वीरत्व वश तुम को पड़ेगा युद्ध करना ही न क्या ।।५६।।"

"मैं रण करुँगा ही न, यों कहना तुम्हारा व्यर्थ है।
निज प्रकृति के प्रतिकूल चलने में न जीव समर्थ है ।।
तुम स्वत्व तज पर–आश्रयाजीवी चले बनने अहो।
तो कौन वीर स्वतंत्रता प्रेमी बनेगा फिर कहो ।।५७।।"

"कर्त्तव्य सुख बाधक सखे ! संशय मिटा दो सर्वथा।
यह बुद्धि को निष्क्रिय बनाता पंक करिणी को यथा ।।
अतएव देता हूँ सखे विद्या तुम्हें अभय प्रदा।
कृत कर्म का फल भोगना पड़ता नहीं जिससे कदा ।।५८।।

"तुम कर्म योगी बन सकोगे वीर ! इस विज्ञान से।
होती कदापि न खिन्नता निष्काम कर्म-विधान से ।।
कर्त्तव्य पालन मात्र में ही पार्थ तव अधिकार है ।।
फल प्राप्ति हो सकती नहीं मन्तव्य के अनुसार है ।।५९।।"

"निज कर्म फल की कामना करना धनञ्जय तुम नहीं ।
पर सर्वथा कर्त्तव्य से न विरक्त हो जाना कहीं ।।
फल कामना को त्याग कर कर्त्तव्य रत जो वीर है ।
ममता अहंता से रहित वह शान्ति पाता धीर है ।।६०।।

"कर्ता न मैं हूँ कार्य का, यह भाव है जिसका सदा ।
चिन्ता न करता चित्त जिसका कर्म के फल की कदा ।।
सम हैं जिसे अर्जुन जयाजय लाभ हानि सदैव ही ।
बँधता न योगी कर्म बन्धन में कदापि सखे ! वही ।।६१।।"

"निश्चेष्ट कर्मेन्द्रिय हुईं पर चित्त विषयासक्त है ।
जिसका सखे वह दम्भ मिथ्याचार में अनुरक्त है ।।
कर्त्तव्यनिष्ठ प्रशस्त है वह कर्मयोगी सर्वदा ।
आशा-निराशा से रहित हो कर्म जो करता सदा ।।६२।।"

"विभु, चित्त प्रेरक कर्म साक्षी, फल प्रदायक है सदा ।
यह धारणा अविचल तुम्हारे हृदय में हो सर्वदा ।।
आग्रह करोगे फिर न तुम कर्त्तव्य के परित्याग का ।
अनुभव तुम्हें होगा सखे न स्वकर्म फल अनुराग का ।।६३।।

ऐसा न कोई कर्म है निर्दोष हो जो सर्वथा ।
है कार्य दोषावृत सखे ! सब वन्हि धूमावृत यथा ।।
पर कर्म का अवलम्ब कर ही सिद्धि पाता जीव है ।
आसक्ति का परित्याग कर मिलता विनोद अतीव है ।।६४।।

जो है प्रवर्तक जीव का संसार जिससे व्याप्त है ।
निज कर्म फल देकर उसे सन्यास होता प्राप्त है ।।
उपदेश यों देते हुए निष्काम कर्म विधान का ।
हरि ने निवारण कर दिया कौन्तेय के अज्ञान का ।।६५।।

कर्त्तव्य विषयक अल्प भी संशय न अर्जुन को रहा।
हरि के कथन में हो गयी श्रद्धा अतीव सुखावहा ॥
पायी विजय संग्राम कर उत्साह उसका जग गया।
पर शोक ! भारत का भविष्य हताश होने लग गया ॥६६॥

पारस्परिक विद्वेष वाचक ! हम सभी को हेय है।
अपहरण परकीयांश का न तथा कदापि विधेय है ॥
ऐश्वर्य भारत का विलीन विनाश-सागर में न जा।
होता, न जो बहती नदी कुरूक्षेत्र से रण-रक्तजा ॥६७॥

※ इति चतुर्थ सर्ग ※

—— o ——

पंचम सर्ग

अनुरागिणी जिसकी रही प्राचीनता सविशेष है ।
संसार में वह देश केवल एक भारत देश है ॥
सहते हुए आघात दुःसह स्वत्व - शाली हो सका ।
निज संस्कृति को, सभ्यता को रख सुरक्षित जो सका ॥१॥

वाचक ! न यह प्राशस्त्य अब उस देश का हम गा रहे ।
स्वाधीनता ने जो सहे आघात गिनने जा रहे ॥
सैश्वर्य जिसने विश्व का एकाधिपत्य सदा किया ।
स्वातन्त्र्य रक्षा हो चली उसके लिए दुष्कर क्रिया ॥२॥

इतिश्री हुई जब पाण्डवों के वंश के राजत्व की ।
निष्प्रभ हुई वाचक ! छटा वह भारतीय महत्व की ॥
अवलोक जन संहृति जनित वह शून्यतातिभयावहा ।
चिरकाल तक इतिहास मूच्छित मौन भारत का रहा ॥३॥

वाचक ! युगान्त तमिस्र ने निस्तब्ध सा भारत किया ।
निर्विण्ण हो उत्साह ने औदास्य का आश्रय लिया ॥
विश्रुत-सकी रह भारतीय प्रभुत्व की केवल कथा ।
व्यापक नियंत्रण रह गया पर विश्व में उसका न था ॥४॥

सम्बन्ध भारत का हुआ विच्छिन्न सा संसार से ।
अन्यान्य देशों का हुआ पार्थक्य स्वेच्छाचार से ॥
इतिहास भारत से पृथक उनके रचे जाने लगे ।
होते हुए भी आर्य वे कुछ और कहलाने लगे ॥५॥

भिन्न स्वरूपा संस्कृति उनकी तदा होने लगी।
गुरुता इत: प्राचीनता इस देश की खोने लगी ॥
जो सभ्यता इस देश की थी विश्व में व्यापक रही।
विस्मृत न वाचक! कर सकी केवल उसे भारत मही ॥६॥

इससे न पहिले का किसी भी देश का इतिहास है।
इस वृद्ध भारत से प्रथक वा सांस्कृतिक न विकास है॥
इतिहास तत्कालीन भारतवर्ष का ही था रहा।
वन विश्व का इतिहास जिसको आज बुधजन गा रहा ॥७॥

पाश्चात्य मत अवलम्ब कर अपनी भुला प्राचीनता।
कहने लगे हम आज जिससे तज विवेचनशीलता ॥
"आदिम निवास स्थान भारतवर्ष आर्यों का न है।
हो वृद्धिशील रहा जगत् में उत्तरोत्तर ज्ञान है ॥८॥"

"उत्पत्ति पंच सहस्र वर्षों से हुई इतिहास की।
कल्पित कथा है पूर्व इससे भारतीय विकास की॥"
इन भ्रान्ति मूलक धारणाओं में प्रवाहित हो रहे।
हम आज यों वाचक! सनातन आत्मगौरव खो रहे ॥९॥

उस युद्ध का निष्क्रिय हुआ अब तक न दुष्परिणाम है।
प्राचीन गौरव का हमें कुछ याद केवल नाम है॥
हम कौन थे इसका समर्थन भी हमें दुष्कर हुआ।
सहकर असह्याघात के इतिहास हा! जर्जर हुआ ॥१०॥

कुछ काल बीता शान्ति ज्योति चली जगद् विस्तीर्ण हो।
निर्माण नव-युग का अहिंसा ने किया अवतीर्ण हो॥
कुछ और गति से राजनैतिक स्रोत शुचि बहने लगा।
फिर वृद्ध भारत देश का इतिहास सोते से जगा ॥११॥

होने लगा था संकुचित ऐश्वर्य भारतवर्ष का।
करने लगे अन्यान्य देश प्रयत्न निज उत्कर्ष का॥
जब शक्ति दिग्विजयोन्मुखी इस देश की निष्क्रिय हुई।
उस काल उनको स्वावलम्बन की महत्ता प्रिय हुई॥१२॥

सहसा सिकन्दर का हुआ नव अभ्युदय यूनान में।
जगती विजय की कामना जिसको हुई अभिमान में॥
वीर प्रसू भारत धरा की ओर निर्भय चल दिया।
सोत्साह निज-रण-चातुरी का मार्ग में अभिनय किया॥१३॥

बढ़ती चली आती सिकन्दर सैन्य अति विकराल थी।
स्वाधीनता शंकित हमारी हो रही उस काल थी॥
कर सिन्धु नद को पार भारत में विजेता आ गया।
झेलम तटी पर किन्तु वह अपना प्रभाव मिटा गया॥१४॥

दुर्गम अचल पुरुराज ने धीरत्व का परिचय दिया।
मार्गावरोध वहीं सिकन्दर सैन्य-सरिता का किया॥
सहमत न था पुरुराज निज स्वातन्त्र्य देने के लिए।
कटिबद्ध था जिसको सिकन्दर छीन लेने के लिए॥१५॥

अनिवार्य रण को देख उसकी प्रेयसी चिन्तित हुई।
वीरत्व सुन पुरुराज का अनुरागिणी शंकित हुई॥
थी सुन चुकी इस देश के वह दानवीरों की कथा।
अवगत हुई क्षत्रिय नरेशों की उसे राखी प्रथा॥१६॥

जाग्रत हुई उसके हृदय में भावना आशामयी।
उपहार-रक्षा सूत्र ले पुरुराज से मिलने गयी॥
प्रासाद में जा सुन्दरी ने भूप को परिचय दिया।
सौजन्य शिष्टाचार से पुरुराज ने स्वागत किया॥१७॥

विनतानना निज आगमन का हेतु दर्शाते हुए ।
पुरुपाणि पंकज में सुरक्षा सूत्र पहिनाते हुये ।।
कहने लगी "भ्रात: समर्पित यह तुम्हें उपहार है ।
हे बन्धु मम सौभाग्य रक्षा का तुम्हीं पर भार है ।।१८।।"

"तुम जानते इस देश पर आक्रमण प्रियतम ने किया ।
सत्वर सिकन्दर ने निमन्त्रण युद्ध का तुमको दिया ।।
पर वीर क्रोधावेश में तुम भूल मत जाना कहीं ।
रण क्षेत्र में उनका निधन निज पाणि से करना नहीं ।।१९।।"

"संकल्प भावी पति बनाने का उन्हें मैंने किया ।
आशा लता का पुष्प भ्रात: ? आज सौंप तुम्हें दिया ।।"
रिपु प्रेयसी का सुन वचन निस्तब्ध सा पुरु हो गया ।
अवलोक राखी पाणि में सौकर्य उसका खो गया ।।२०।।

अनुभव उसे ऐसा हुआ कर बाँध कर मायाविनी ।
ले जा रही खींचे मुझे कहते हुए यह कामिनी ।।
"स्वात्माभिमान स्वतन्त्रता को भूल है जाना तुम्हें ।
चलकर सिकन्दर की शरण में त्राण है पाना तुम्हें ।।२१।।"

अनुरोध राखी कर रही "मुझको तिरस्कृत कर कहीं ।
अपने विशद आदर्श को होने मलिन देना नहीं ।।"
कुछ काल किंकर्तव्यमूढ़ विनीत भूप खड़ा रहा ।
फिर कीर्ति रक्षा का स्मरण कर कुवलयाक्षी से कहा ।।२२।।

"अनुभव निराशा का तुम्हें होगा न मम औदार्य में ।
मम कर न होगा हेतु तव वैभव का रण कार्य में ।।"
मम शौर्य के अभिमान की इसमें न सम्भावना ।
है, पर न रक्षा की तुम्हारी व्यर्थ होगी याचना ।।२३।।

वाचक ! विदा पुरुराज से ले निज शिविर ललना गई ।
इस ओर भारत-वीर-सेना सज गयी गजतामयी ॥
स्वागत कराने के लिए यूनान के वीरत्व का ।
भेजा तनय उपदेश दे पुरु ने समर धीरत्व का ॥२४॥

रण क्षेत्र में युवराज ने बल बुद्धि का परिचय दिया ।
निज युद्ध कौशल से सिकन्दर बीर को शंकित किया ॥
पुरु का परीक्षण चाहता हा किन्तु भारत भाग्य था ।
नृप को सहन करनी पड़ी सुत शोक की दारुण व्यथा ॥२५॥

पा वीरगति युवराज जा शोभित हुआ सुरधाम में ।
सेना सजा तन्मय हुआ पुरु वीर आ संग्राम में ॥
गज वाहिनी विकराल ले अभिनय किया पुरुषार्थ का ।
मानों अमर्षोदय हुआ अभिमन्यु बध से पार्थ का ॥२६॥

विचलित चमू अवलोक निज आगे सिकन्दर आ गया ।
शस्त्रास्त्र वर्षा हो चली पुरु शीश पर सम्यक् तया ॥
रिपु-व्यूह को सुविशालकाय गजाधिरुढ़ नरेन्द्र यों ।
करने लगा विच्छिन्न गज दल का सरोष मृगेन्द्र ज्यों ॥२७॥

उन्मत्त-वारण व्यूह ने रिपु-वाजि दल दारण किया ।
झेलम तटी को रक्त भारत वीर दल ने कर दिया ॥
सन्मुख सिकन्दर पर किया खर दृष्टिपात नृपाल ने ।
निर्भीकता की मूर्ति को मानो विलोका काल ने ॥२८॥

करवाल उन्नत हो गयी कर में सवेग भयावहा ।
पर मंत्र कीलित व्याल इव पुरु श्वास ही लेता रहा ॥
हृदयस्थ क्रोधावेश का अवरोध राखी ने किया ।
अपने निकट कर में उसे उसने नहीं आने दिया ॥२९॥

था कह रहा अनुलाप यह संतप्त श्वास समीर का ।
प्रण भंग होता है सिकन्दर के निधन से वीर का ।।
सुतशोक मानस में भरा था क्रोध दावानल जगा ।
शैथिल्य का अनुभव उसे सर्वाङ्ग में होने लगा ।।३०।।

प्राणान्त वाहन का किया तत्काल ही असिपात ने ।
अवलोक भूशायी सिकन्दर को, कहा नरनाथ ने ।।
"मम कर तुम्हें है दे चुका अभयत्व यह निःशंक हो ।
पर्याप्त हैं पर वीर ! मम सैनिक, सचेत सभय रहो ।।३१।।

वाचक ! पुनः सत्वर सिकन्दर ने तुरंगासीन हो ।
उत्साह संचालन किया रण कार्य में तल्लीन हो ।।
पर वीर पुरु को जीतना था हो रहा दुःसाध्य सा ।
रण क्षेत्र तजने के लिए यूनान दल था बाध्य सा ।।३२।।

तत्क्षण सिकन्दर ने समर चातुर्य का परिचय दिया ।
गज व्यूह को अनल स्फुलिंग चमत्क्रिया शंकित किया ।।
उदभ्रान्त हो रण क्षेत्र से गजता पलायित हो चली ।
बढ़ने लगी आगे पुनः यूनान की शूरावली ।।३३।।

अवलोक पावक नृत्य पुरु करि व्यूह पीछे हट चला ।
पाने सिकन्दर की लगी साफल्य सत्वर रण कला ।।
रिपु को दिखाना पीठ, पुरु के शौर्य के विपरीत था ।
रण से विमुख होना मनस्वी के लिए अवगीत था ।।३४।।

करवाल ले पुरु कूद कर गज से धरणि पर आगया ।
सोत्साह दिखलाने लगा रण धीरता रिपु दुर्जया ।।
दल हट गया पीछे, नृपति का युद्ध वह करता रहा ।
प्रण भंग राखी का न हो इस बात से डरता रहा ।।३५।।

विस्मृत उसे था, आत्मरक्षण, ध्यान था करवाल का।
कारण न बन जाये कदाचित यह सिकन्दर काल का ॥
रिपु के प्रहारों से शिथिल सर्वांग उसका हो गया।
कर्त्तव्य रक्षण मार्ग में अधिकार उसका खो गया ॥३६॥

रण से विमुख होना सिकन्दर का निधन करना तथा।
अविधेय दोनों कार्य थे उसके लिये वह सर्वथा ॥
मिटता हुआ अस्तित्व अपना, निज विशद आदर्श में।
अवलोक पुरु विनिमग्न होता जा रहा था हर्ष में ॥३७॥

पुरु की दशा यह देखकर बन्दी सिकन्दर ने किया।
कहते हुये यों वीर प्रियता का उसे परिचय दिया ॥
"स्वातन्त्र्य प्रेमी वीर पुरु परतंत्र हो रण कार्य में।
मम पाश में न बँधे रहे बंध किन्तु निज औदार्य में ॥३८॥

तुम सन्धि आ मुझसे करो यह चाहता ही मैं रहा।
हठ वश नहीं तुमने सुना कुछ भी अहो मेरा कहा ॥
व्यवहार मैं कैसा तुम्हारे प्रति करूँ भूपति ! कहो ?"
"पुरु ने कहा, "जैसा उचित हो, राजनीति विधान हो ॥३६॥"

वाचक ! बनाया मित्र निज पुरु को सिकन्दर वीर ने।
सम्मान उसका भी किया सैश्वर्य पुरु रणधीर ने ॥
देखा सिकन्दर ने सुखद भारत विजय का स्वप्न था।
पर हो गया इस युद्ध से पुरुषार्थ उसका सब वृथा ॥४०॥

यूनान सेना का विनष्ट सदर्प साहस हो गया।
सोत्साह भारत बल-जलधि में शौर्य उसका खो गया ॥
आगे मगध साम्राज्य में घुसना असम्भव सा हुआ।
मुकुलित मनोरथ हो चला उस वीर का विकसा हुआ ।४१।

होकर सिकन्दर ने विवश प्रस्थान भारत से किया।
निज सैन्य की इच्छा विलोक स्वदेश को वह चल दिया ॥
पुरु पाणि में राखी रही स्वाधीनता इस देश में।
अवशेष विजिगीषा सिकन्दर के विचारावेश में ॥४२॥

शासक सिकन्दर बन सका न विशाल भारत देश का।
आतंक था छाया हुआ सर्वत्र ही मगधेश का ॥
अधिकृत प्रदेशों की सुरक्षा के लिये रणधीर ने।
रहने दिया जाते हुये कुछ सैनिकों को वीर ने ॥४३॥

यूनानियों ने पश्चिमोत्तर भाग को अपना लिया।
राजत्व सेनापति सेल्यूकस् ने वहाँ स्थापित किया ॥
पर चन्द्रगुप्त नरेश ने उसको पराजित कर दिया।
आतंक से यूनानियों के मुक्त भारत को किया ॥४४॥

साहस उन्हें न हुआ पुनः इस देश मध्य प्रवेश का।
राजत्व भारत में रहा जब तक अशोक नरेश का ॥
सुख-शान्ति का साम्राज्य वह उस काल भारत में रहा।
आनन्द का निष्पंक स्रोत अशोक भूभृत् से वहा ॥४५॥

स्वर्ग-प्रयाण अशोक का रिपु के लिये सुखकर हुआ।
यूनानियों का आक्रमण सीमान्त देशों पर हुआ ॥
रणक्षेत्र में उनको हराकर शुंगवंश प्रदीप ने।
तब अश्वमेध किया यशोधन पुष्यमित्र महीप ने ॥४६॥

कुछ काल के ही बाद शक समुदाय ने साहस किया।
कर आक्रमण पांचाल को अधिकार में निज कर लिया ॥
उनकी चिरस्थायी नहीं पर राज्यसत्ता रह सकी।
रण क्षेत्र में न प्रताप विक्रम सूर्य का वह सह सकी ॥४७

शक जाति भारत से पराजित हो बहिर्गत हो गई।
पर आ गई कुछ और भारत में विषम विपदा नयी ॥
निर्भीक हो आघात क्रूर असभ्य हूणों ने किया।
सीमान्त देशों को अदय कौटिल्य का परिचय दिया ॥४८॥

मार्गाविरोध स्कंदगुप्त नरेश ने जाकर यहीं।
करते हुये पांचाल में उनको दिया घुसने नहीं ॥
उसके सुजीवन काल में साफल्य हूण न पा सके।
आघात भारत के न वे स्वातन्त्र्य को पहुँचा सके ॥४९॥

वंशावतंश स्कन्दगुप्त नरेश के उपरान्त वे।
घुसने लगे साम्राज्य में करने लगे उत्पात वे ॥
वह काल भारत के लिये दुर्भाग्य निर्माता बना।
केवल न थी स्वातन्त्र्य के ही हरण की सम्भावना ॥५०॥

करने लगे द्रुत, बौद्ध भिक्षु समाज का संहार वे।
निज शाठ्य दुर्व्यवहार का इस देश में विस्तार वे ॥
धार्मिक विचारों पर हुआ आघात उनका देश के।
सौजन्य शान्ति उपासकों से भी न आर्जव ले सके ॥५१॥

निज राजधानी स्यालकोट नगर बनाया शीघ्र ही।
कुछ काल वह उद्दण्डता उनकी यहाँ बढ़ती रही ॥
पश्चात् यशोधर्माह्व मालव राज ने जा रण किया।
सानीक हूणाधिप मिहिरकुल को पराजित कर दिया ॥५२॥

प्राबल्य हूणों का विनष्ट हुआ यहाँ पर सर्वथा।
जिसकी रहा दुर्दम्यता पर उन्हें सक्रिय गर्व था ॥
सर्वांशतः आतंक मिट इस देश से उनका गया।
सुख शान्ति की होने व्यवस्था फिर लगी सम्यकतया ॥५३॥

* इति पञ्चम सर्ग *

षष्ठम सर्ग

बढ़ता रहा पारस्परिक विद्वेष भारतवर्ष में।
साम्राज्य - लोलुप हो नृपति तन्मय रहे संघर्ष में।।
वह आक्रमणकारी तदा इस देश में आये गये।
सुख शान्ति में प्रत्यूह नित्य नवीन पहुँचाये गये ।।१।।

मिटती रहीं सौभाग्य से वे शीघ्र बाधायें सभी।
स्वातन्त्र्य भारत का न अपहृत हो सका उनसे कभी ।।
उस काल भारतवर्ष में आपत्ति वह आयी नयी।
जो द्रुत हमारे देश धन तन मन वचन में घुस गयी ।।२।।

उत्थान यवनों का हुआ मन्तव्य कुछ लेकर नये।
सर्वत्र वे क्रमशः प्रविष्ट सधर्म होने लग गये।।
उनके उदार विचार थे पर-धर्म के प्रति क्या ? नहीं।
पायी गयी छाया मरूद्भव ताल वृक्षों से कहीं ।।३।।

अवनति यदपि उस काल थी क्रमशः हमारी हो रही।
पर थी तथापि महान् भारत की सुवर्णमयी मही ।।
कर संगठन जो देश निज-निज शक्ति संचय लग्न थे।
वे भारतीय समृद्धि के प्रति लोभ में विनिमग्न थे ।।४।।

अनुचित न यों होगा कथन, संसार को उत्कर्ष का।
दिखला सका पथ निज प्रभा से स्वर्ण भारत वर्ष का ।।
धन-धान्य भारत देश का अपहरण करने के लिए।
हीं यत्न निज, उत्थान के अन्यान्य देशों ने किए ।।५।।

महमूद गजनाधीश ने भारत विभव चर्चा सुनी।
सोत्साह लोभाकृष्ट हो उसने यवन सेना चुनी॥
आघात सीमा प्रान्त पर सहसा यवन दल ने किया।
हठधर्मिता का भारतीयों को कुटिल परिचय दिया॥६॥

एकत्र कर आनन्दपाल यथावकाश वरूथिनी।
रिपु को गया रण में दिखाने शक्ति अरि निर्मूलिनी॥
अवलोक क्षत्रिय शौर्य, रिपु सह-सैन्य विस्मित रह गया।
उस भारतीय कृपाण धारा में यवन-मद वह गया॥७॥

पर था समय प्रतिकूल नृप का गज पलायित हो चला।
रणक्षेत्र से उदभ्रान्त हो अवलोक यवनाहव कला॥
नृप को पलायित जान कर सैनिक निराशाकुल हुये।
जीते हुये भी वे पराजय प्राप्त कर व्याकुल हुये॥८॥

सौभाग्य से गजनाधिपति रण में विजय श्री पा गया।
अविलम्ब आर्यावर्त में आतंक उसका छा गया॥
देवालयों को नष्ट कर धन लूट भारत देश का।
निज धर्म का विस्तार करना ध्येय था यवनेश का॥९॥

बढ़ने लगी उत्साह साहसशीलता गजनेश की।
होने लगी समृद्धि अपहृत वृद्ध भारत देश की॥
अभिमान मान शनैः शनैः क्रमशः - दलित सबका हुआ।
हो संगठित नृपसघ से न प्रबन्ध आहव का हुआ॥१०॥

हो दुर्दशा देवालयों की राजनगरों की गयी।
विश्रुत धन प्रियता हुई यवनेश की हठतामयी॥
सौभाग्य वश बढ़ता रहा सौकर्य गजनाधीश का।
लूटा गया फिर भव्य मन्दिर सोमनाथ गिरीश का॥११॥

महमूद सेनाक्रान्त बहुशः उत्तरी भारत हुआ।
आह्लाद आर्यावर्त का दुर्दान्त यवनाहृत हुआ॥
रत्नप्रभोद्भासित भवन यवनाधिपति के हो गये;
ऐश्वर्य मय जागृत हुये उनके विचार नये-नये॥१२॥

उस काल नैतिक रण गया छिड़ राजकीयोत्कर्ष का।
प्रारम्भ गजनागोर के! वाचक हुआ संघर्ष का॥
फिर वृद्ध भारत को मिला अवकाश कुछ उत्थान का।
होने लगा पुनरागमन समृद्धि सौख्य विधान का॥१३॥

ऐश्वर्य शौर्याह्लाद फिर अविनश्व ही विस्तृत हुआ।
अवलोक जिसको आक्रमण, महमूद का विस्मृत हुआ॥
उन्नत हुआ कहते हुये यों शीश भारत देश का।
अविजेय है ऐश्वर्य पृथ्वीराज वीर नरेश का॥१४॥

शासन जमाया गोरियों ने उधर गजना में तभी।
होने यवन दल से लगा आक्रान्त भारत देश भी॥
आक्रमण गुर्जर प्रान्त पर गौरी मुहम्मद ने किया।
पर वीर बालक भीम ने उसको पराजित कर दिया॥१५॥

विद्वेष वन जयचन्द्र - पृथ्वी राज का सम्यक्तया।
अवतीर्ण भारतवर्ष का दुर्भाग्य वाचक! हो गया॥
जयचन्द्र ने समरार्थ गौर नरेश आमंत्रित किया।
निजदेश बन्धु विरोधिता का हा उसे परिचय दिया॥१६॥

स्वर्णावसर का सदुपयोग किया सपदि यवनेश ने।
उसको समुत्साहित किया जयचन्द्र के संदेश ने॥
वाचक! हुआ फिर आक्रमण निःशंक यवन समाज का।
प्रत्यूह-भंग हुआ विलास-विनोद पृथ्वीराज का॥१७॥

निस्तन्द्र चन्द्र कवीन्द्र ने दिल्ली महीपति को किया।
चौहान ने जा युद्ध में गौरी पराजित कर दिया॥
आहत शहाबुद्दीन की, क्षत्रिय समर-धर्माश्रयी।
बन, वीर पृथ्वीराज से निधन-क्रिया नहिं की गयी ॥१८॥

आहत यवन-पति को समर से भाग ले सेवक गया।
क्षत्रिय चमू विजयी हुई रणक्षेत्र में रिपु दुर्जया॥
वत्सर व्यतीत हुआ पुनः आक्रमण गौरी ने किया।
भारत विजय उत्साह का चौहान को परिचय दिया ॥१८॥

पर युद्ध में करना पराजित शब्दवेधि नरेश को।
वाचक ! प्रतीत हुआ असम्भव सा प्रबल यवनेश को॥
निद्रावशंगत क्षत्रियों पर रात्रि में उसने अतः।
रणक्षेत्र में सहसा किया आघात निर्दय सर्वतः ॥२०॥

बनकर यवन बन्दी सुकवि वीराग्रणी चौहान को।
करना पड़ा हा आत्मघात दिखा पराक्रम मान को॥
अनुकूल गौरी के समय था स्थैर्य उसका बढ़ गया।
करने विजय कन्नौज को सेना सजा कर चढ़ गया ॥२१॥

जयचन्द्र को निज देश बन्धु विरोधिता का शीघ्र ही।
रण में मिला फल रो उठी निज भाग्य पर भारत मही॥
केवल न धन को लूटना ही गोरियों का लक्ष्य था।
शासन जमाना भी उन्हें था देश में निज सर्वथा ॥२२॥

स्वातन्त्र्य आर्यावर्त का उस काल था अपहृत हुआ।
आतंक-पंक प्रविष्ट व्याकुल उत्तरी भारत हुआ॥
सानंद हो विजयी शहाबुद्दीन गजना को गया।
करने लगा राजत्व कुतुबुद्दीन संस्थापित नया ॥२३॥

राजत्व यवनों का हुआ प्रारम्भ आर्यावर्त में।
गिरने लगे भारत नृपति परतन्त्रता के गर्त में॥
भारत निवासी बन गये स्थायी यवन उत्साह से।
करते हुये निज धर्म का विस्तार प्रसभ प्रवाह से॥२४॥

सिद्धान्त नैतिक, सम्प्रदायाधीन यवनों ने किये।
सर्वांशत: उनके सदा अनिवार्य पालन के लिये॥
परतंत्र शासनबद्ध रखने के लिये भारत सदा।
निर्बल बनाना देश को उनको अभीष्ट हुआ तदा॥२५॥

गो, देश का दल-बल विभव आनन्दधन था सर्वत:।
अविलम्ब गोहिंसा गयी बन यवन धार्मिकता अत:॥
धाचक! मनोमालिन्य उनके प्रति यही बढ़ता रहा।
जिससे न अद्यावधि हुआ पारस्परिक सौहार्द हा॥२६॥

"वह था समय कुछ और मुस्लिम बन्धुओ सोचो सही।
इस काल की अपनी परिस्थिति कह रही कुछ और ही॥
तुम नागरिक हो आज भारत देश के ही क्या नहीं?
उत्थान करना है न क्या अपना तुम्हें रहकर यहीं॥२७॥"

इस देश का सम्मान होने में तुम्हारा मान है।
इस देश के उत्थान में ही शान्ति-सौख्य विधान है॥
क्या? अंशभागी हो न तुम इस देश की समृद्धि में।
मिलता न क्या सुख है तुम्हें धन धान्य की अभिवृद्धि में॥२८

"फिर साम्प्रदायिक रीतियों से राष्ट्र का अपकार क्या?
करते रहोगे बन्धुओं यों ही विरोध प्रसार क्या?
उद्देश्य लेकर राजनैतिक साम्प्रदायिक भाव से।
प्रचलित किया गो वध गया था और ही प्रस्ताव से॥२९॥"

पर सम्मिलित अपनी व्यवस्था राजनैतिक आज है।
मुँह ताकता सा यह तुम्हारा आर्य वीर समाज है।।
समृद्धि-साधन, राष्ट्र की जो हैं मिटाते दीनता।
सादर करो उपयोग उनका त्याग कर हठशीलता ।।३०।।

पारस्परिक विक्षोभवर्द्धन क्या नहीं दुष्कर्म है।
अब राष्ट्र का वैभव मिटाने में न कोई धर्म है।।
हठधर्मिता को त्याग दो, उत्थान अपना लक्ष्य है।
सोत्साह कह दो "अब नहीं गोधन हमारा भक्ष्य है ।।३१।।"

"स्वाधीन कर निजदेश को सहयोग मय संघर्ष से ।
करना हमें क्या है न अब भूषित इसे उत्कर्ष से ।।
प्रिय राजनैतिक दृष्टि का अवलम्ब कर आगे बढ़ो ।।
दुर्गम शिखर पर साम्प्रदायिक भावना के मत चढ़ो ।।३२।।"

"हठशील हो, घृत दुग्ध धन को नष्ट कर सोचो कहो ।
कहला सकेंगे विश्व में हम शक्तिशाली क्या अहो ।।"
तज यह भविष्यायोजना आगे चली अपनी कथा ।
राजत्व धर्म प्रसार यवनों का चला हो सर्वथा ।।३३।।

आदर्श जाति स्नेह का अविलम्ब ही परिचय दिया।
निज संस्कृति का, सभ्यता का देश में मिश्रण किया ।।
क्षत्रिय-यवन समुदाय में प्रतिद्वन्द्विता बढ़ती गयी ।
विस्तृत यवन सत्ता चली हो, साम्प्रदायिकतामयी ।।३४।।

स्वात्माभिमानी क्षत्रियों का प्रगतिमय संघर्ष था ।
क्रमशः प्रसारित यवन शासन हो रहा सोत्कर्ष था ।।
बहु बार क्षत्रिय-यवनदल गृह युद्ध में तत्पर हुआ ।
पर एक का करना विनाश द्वितीय को दुष्कर हुआ ।।३५।।

स्वातन्त्र्य प्रेमी धीरजन, वीर-प्रसू भारत मही।
उत्पन्न वीर, समय-समय पर देश में करती रही।।
जो संस्कृति की, सभ्यता की, धर्म की इतिहास की।
करते रहे रक्षा निरन्तर भारतीय प्रकाश की।।३६।।

क्षत्रिय तदा निशितासि के दिखला प्रभाव नये नये।
स्वातन्त्र्य प्रेमोन्माद का रणरक्त चित्रण कर गये।।
नवनीत तनु निज जौहरानल में विदग्धीकृत किया।
क्षत्राणियों ने भारतीय सतीत्व का परिचय दिया।।३७।।

स्वातन्त्र्य-प्रेम-प्रतीक वीर प्रताप ने सब कुछ किया।
प्रणवीरता का देश को निर्भीक हो परिचय दिया।।
पर हो सका उनसे न आदर मानसिंह नरेश का।
सोत्साह सोता रह गया हा भाग्य भारत देश का।।३८।।

निज बन्धु का, कह कर यवन दूषित 'अभीत' तदा न जो।
हठशील हो करता प्रताप न मान का अपमान जो।।
यदि मानसिंह प्रताप का सौहार्द हो जाता यहाँ।
वाचक ! मुगल साम्राज्य का अस्तित्व ही फिर था कहाँ।।३९।।

पारस्परिक विद्वेष पावक में विदग्धी भूत हा।
उस काल भी विज्ञान साहस शौर्य सब होता रहा।।
दु:सह यवन राजत्व में वह भी समय आया तदा।
विश्रुत हुई औरंगजेबी साम्प्रदायिकता यदा।।४०।।

उस यवन-शासन काल में सहते हुये धार्मिक व्यथा।
आर्यत्व भारत का रहा परतन्त्र ही केवल न था।।
उन शासकों के युद्ध भी पारस्परिक होते रहे।
परिणामत जिनके अपरिमित: कष्ट भारत ने सहे।।४१।।

आघात निर्दय वृद्ध भारत पर विदेशों न किये।
दुर्भाग्य ने तब हा यहाँ शासक अशक्त बना दिये ।।
तैमूर नादिर के असह्याघात की वाचक न हा।
कुछ भी कही जाती कथा, धन धर्म शान्ति सुखापहा ।।४२।।

बहती रही हठधर्मिता जो यवन नीति प्रवाह में।
चिरसुप्त वह विद्वेषिता जाग्रत न है करना हमें ।।
है कर चुका इतिहास अपना सब सहन वह यातना।
आदर्श मन्दिर में हमारे है क्षमा की स्थापना ।।४३।।

प्रतिबिम्ब जिसका निज छटा सर्वत्र फैलाता रहा ।
औदार्य शिक्षा विश्व हमसे सर्वदा पाता रहा ।।
अपना बनाने में हमें वे यत्नशील सदा रहे ।
पर आज वाचक ! हम उन्हें अपना बनाने आ रहे ।।४४।।

सकीर्ण थे उनके हृदय, अपने विशाल प्रतीत हैं।
नैष्ठुर्य था उनमें भरा अपने विचार विनीत हैं ।।
उस काल के इतिहास में शिव राज की गौरव कथा।
स्वात्माभिमानी भारतीयों को हुई प्रिय सर्वथा ।।४५।।

स्वातंन्त्र्य प्रेमी, वीर गुरु गोविन्द सिंह महारथी।
की स्वावलम्ब प्रभावता विश्रुत हुई करवाल थी ।।
कुछ काल यों ही साम्प्रदायिक द्वेष का नर्तन हुआ।
अविजेय प्रकृति विधान से फिर समय परिवर्तन हुआ ।।४६।।

प्रारम्भशील यहाँ यवन राजत्व था वाचक हुआ।
क्रमशः ततः इतिहास में निज प्रगति संचालक हुआ ।।
अविरोधिता यद्यपि न थी उसको मिली सम्यक्तया।
पर हो यवन साम्राज्य का उत्कर्ष भारत में गया ।।४७।।

अवलोक शासन की निरंकुश साम्प्रदायिक भावना ।
रचता रहा आर्यत्व उनके नाश की प्रस्तावना ।।
वह भी समय कुछ काल के पश्चात् फिर आया तदा ।
होने सवेग लगी यवन राजत्व की अवनति यदा ।।४८।।

होते सुमन विकसित सदा ही, म्लान होने के लिए ।
करते जलद जल पात गर्जन स्वत्व खोने के लिए ।।
चढ़ते रजः कण पतित होने के लिए ही व्योम में ।
क्षयग्रस्त होने के लिये ही वृद्धि होती सोम में ।।४६।।

सम्राट दिल्ली के लगे निःशक्त होने सर्वथा ।
आतंक उनका मिट चला जिस पर उन्हें अति गर्व था ।।
राजा नवाबों की बढ़ी उस काल स्वेच्छाचारिता ।
लड़ने लगे सब ही परस्पर मिट चली सहकारिता ।।५०।।

होने लगा उन्नत यहाँ पाश्चात्य अध्यवसाय था ।
इंग्लैंड फ्रांस निवासियों का बढ़ चला व्यवसाय था ।।
स्वर्णावसर उनके लिए गृह युद्ध भारत का हुआ ।
अविलम्ब आयोजन यहाँ गौराँग स्वागत का हुआ ।।५१।।

बनकर तथा साहाय्य साधन वे किसी नरपाल का ।
करने प्रसार लगे यहाँ निज सभ्यता के जाल का ।।
लेने लगे वे भाग भारत के नृपति संघर्ष में ।
होने न दी सहमति कभी नृप दल विचार विमर्श में ।।५२।।

जयचन्द्र का अनुगरण वाचक ! मीरजाफर ने किया ।
पारम्परिक विद्वेष का इंग्लैंड को परिचय दिया ।।
अविलम्ब वंग प्रदेश फिर गौरांग शासित हो गया ।
राजत्व भारत में हुआ दुःसह व्यवस्थापित नया ।।५३।।

करते चले थे आ रहे शासन यवन कुछ काले से।
भारत निवासी पर सभी वे बन गये उल्लास से॥
शासन विदेश निवासियों का जा सका न तदा कहा।
केवल परस्पर साम्प्रदायिक वैमनस्य बना रहा॥५४॥

अब बृद्ध भारत हो चला परदेश-शासित सर्वथा।
विश्रुत लगी होने यहाँ गौरांग वीरों की कथा॥
क्रमशः पराजय उन सभी राजा नवाबों की हुई।
जिनकी कलहप्रियता, प्रथित गुरूता किताबों की हुई॥५५॥

व्यवसाय का अवलम्ब कर गौरांग शासक बन गये।
प्रचलित हुए उनके यहाँ उद्योग कार्य नये-नये॥
गौरांग-शासन नीति व्यवसायात्मिका बन सर्वतः।
करती धनोपार्जन रही नैतिक विधानों से अतः॥५६॥

चातुर्य से कर हस्त कौशल नष्ट भारतवर्ष का।
सविधान आयोजन हुआ इंग्लैंड के उत्कर्ष का॥
इंग्लैंड द्वारा देश की उद्योगिता अपहृत हुई।
हमको हमारी स्वावलम्बन भावना विस्मृत हुई॥५७॥

आलस्य व्यसना क्रान्तः भारतवर्ष निर्धन हो चला।
विकसित सवेग हुई यहाँ गौरांग शासन की कला॥
पर धर्म के प्रति राग द्वेष - स्वभावतः उनको न था।
आर्थिक प्रकर्ष, प्रसार शासन का उन्हें प्रिय था तथा॥५८॥

उस काल कृत्रिमता हुई व्यापक सकल संसार में।
सुविचित्र परिवर्तन गया हो भारतीय विचार में॥
नव युग विनिर्मित सा हुआ पाश्चात्य अभ्युत्थान से।
प्राचीनता विस्मृत लगी होने नवीन विधान से॥५९॥

सत्वर विदेशी संस्कृति का, सभ्यता का, नीति का।
अनुकरण भारत कर चला, कर विस्मरण निज कीर्ति का ॥
इस देश को परदेशियों के यंत्र साधन-प्रिय हुए ॥६०॥
विद्या कला कौशल सभी वृद्धत्व वश निष्क्रिय हुए ॥६०॥

संचार भारत में अपूर्व नवीनता का हो गया।
प्राचीन अपना मान धन आनन्द गौरव खो गया ॥
गौरांग शासन ने यहाँ क्रमशः सुदृढ़ता प्राप्त की।
संसार में व्यवसाय-मय अपनी महत्ता व्याप्त की।॥६१॥

वाचक ! समय कुछ और बीता, क्रान्ति जागृत हो गयी।
स्वातन्त्र्य की आयोजना बन गयी धार्मिकतामयी ॥
अनुभव किया इस देश ने निज भूति अवनति पा रही।
हम को विदेशी राजसत्ता धर्म-भ्रष्ट बना रही ॥६२।

विद्रोह-पावक जल उठा सहसा सरोष सगर्व था।
उन्मूलनार्थ विदेशियों की राजसत्ता सर्वथा ॥
गौरांग जन संहार का जिसमें भरा उत्साह था।
उस आर्य मुस्लिम एकता का वह अपूर्व प्रवाह था ।।६३॥

लक्ष्मी बनी रण चण्डिका गौरांग दल विस्मित किया।
करवाल क्रीड़ा रत हुई, लीलार विन्द भुला दिया ॥
थी कह रही मानो छटा वीरांगना के वेश की।
रण में हुई साकार है स्वातन्त्र्य प्रियता देश की ॥६४॥

था देशद्रोही वर्ग का उस काल भी न अभाव हा।
स्वातन्त्र्य प्रियता का अतः दुःखान्त वह नाटक रहा ॥
उत्पन्न क्रुद्ध हो ही गये गौरांग रक्षक जन यहाँ।
अवसर उन्हें कुछ और था अपनी प्रतिष्ठा का कहाँ ॥६५॥

समुचित न संयोजन सका हो, युद्ध वह धृतिहीन था।
विद्रोहियों का नियत कोई एक सेनानी न था ॥
निश्चित दिवस से पूर्व ही प्रज्ज्वलित रण - पावक हुआ।
इस हेतु भारत में नहीं सर्वत्र वह व्यापक हुआ ॥६६॥

होता रहा क्रमशः सचेत सतर्क शासक वर्ग था।
मिलता रहा अवसर उसे विद्रोह के दमनार्थ था॥
कर भारतीयों ने यद्यपि अधिकार दिल्ली पर लिया।
गौरांग सेना ने उन्हें पर द्रुत पराजित कर दिया ॥६७॥

स्वाधीनता न हमें मिली संग्राम वह निष्फल रहा।
विस्तृत हुई फिर शासकों की दमन नीति भयावहा॥
सौभाग्य से इंग्लैंड भारत में विजय श्री पा गया।
आंतक उस पर आर्य मुस्लिम एकता का छा गया ॥६८॥

पारस्परिक विद्वेष दोनों जातियों में वे अतः।
करते रहे आगे निरन्तर वृद्धि - शील विशेषतः ॥
निःशस्त्र, निर्धन, शक्तिहीन बना दिया भारत गया।
परतन्त्रता के जाल में जकड़ा गया सम्यक्तया ॥६९॥

* इति षष्ठ सर्ग *

सप्तम सर्ग:

सब भाँति निष्फल हो रही स्वातन्त्र्य की थी साधना।
मिलती हमें ढूँढ़े न थी श्रेयस्करी आराधना॥
अनुमान होता था यही सम्भव न अब उत्कर्ष है।
परतन्त्र जीवी के लिये दुष्क्रिय सदा संघर्ष है॥१॥

उत्साह साहस स्वावलम्बन की न थी चर्चा रही।
थी बृद्ध भारत में समृद्धि-वधू विनोद न पा रही॥
रोवें हँसें वा हों चकित कैसे कहें किस मोद में।
था बृद्ध भारत खेलता परतंत्रता की गोद में॥२॥

दासत्व-फणि के फण तले मंडूक इव निश्चेष्ट सा।
छाया सुखानुभवी बना जो क्या कहें उस की दशा॥
श्रम संचिता सम्पत्ति का उपभोग करना पाप था।
अधिकार अपने मांगना भी दण्डनीय प्रलाप था॥३॥

दृग थे परनिज दुर्दशा को देखना अपराध था।
स्वातन्त्र्य चर्चा का श्रवण उस काल हा न अबाध था॥
रहते हुए रसना न भारत कह सका अपनी व्यथा।
वाचक! वही उस काल की आ ही गयी आगे कथा॥४॥

बिछने लगा पाश्चात्य नीति विधान का दृढ़ जाल था।
साम्राज्य मानो ग्रीष्म ऋतु का छा गया उस काल था॥
आतंक राजोत्थान का होने लगा विस्तीर्ण था।
क्षिति पर हुआ आकाश से मानो अनल अवतीर्ण था॥५॥

वह सौरभित यजनाग्निधूम विलुप्त सा वाचक हुआ।
जलवायु दूषित धूम्र था यंत्राग्नि का व्यापक हुआ॥
बहने लगा कुछ और ही सन्तप्त गति से वात भी।
होने लगा आकाश से तमसा रजःकरण पात भी॥६॥

राजस्व बढ़ता जा रहा था देश निर्धन हो गया।
केन्द्रित लगा इंग्लैंड में होने महत्त्व नया-नया॥
करते हुए मानो दिनेश रसाभिशोषण सर्वशः।
जाने प्रतीची को लगा प्राची दिशा से नित्यशः॥७॥

निःशक्त दोनों आर्य मुस्लिम ऐक्य दिखलाने लगे।
गौरांग सेवा वृत्ति में एकत्र सुख पाने लगे॥
सब आत्पीय प्रताप से मानो तपस्वी से बने।
एकत्र चरने लग गये गो सिंह सहृदयता सने॥८॥

गौरांग शासन कूटनीति, 'अभीत' हो प्रिय दर्शना।
देने लगी परतन्त्रता हत देश को कुछ सान्त्वना॥
मानो प्रखर - कर - व्याकुली-कृत प्राणियों को ताप हा।
दिवसेश छाया ज्ञात सी होने लगी प्रियता वहा॥९॥

धन धान्य गौरव देश का अपहृत हुआ था जा रहा।
विप्लव ग्रसित गौरांग रक्षक दल विभव था पा रहा॥
अपहृत हुआ मानो सुखद सौन्दर्य वह ऋतुराज का।
पर अभ्युदय नव नित्य था निर्लज्ज अर्क समाज का॥१०॥

व्याकुल क्षयातुर बृद्ध भारत हो रहा था सर्वथा।
निष्चेष्ट निर्धन भारतीयों में न प्रगति न गर्व था॥
मानों रहा कुछ शेष जीवन शुष्क प्राय - तड़ाग - था।
मुरझा रहे जल-जात में अनुराग था न विराग था॥११॥

होने लगी जागृति वती स्वातन्त्र्य की शुभ कामना।
दु:सह सभी को हो गयी परतन्त्रता की भावना ।।
संतप्त भारत चाहता मानो सुना घननाद था।
अब है निदाघ असह्य यह सर्वत्र एव विषाद था ।।१२।।

सौभाग्य वश उपगत हुआ उत्साह से बहना हमें।
स्वातन्त्र्य - सरिता के विचित्र अभूतपूर्व प्रवाह में ।।
इस वार अन्तिम रुप से जो अस्त्र अपनाया गया।
उसने विजय का विश्व को कुछ दृश्य दिखलाया नया ।।१३।।

उस काल भारत में हुआ अवतार मोहन दास का।
सूखे हुए तरू में हुआ विकसित सुमन आकाश का ।।
वह कौन था हम क्या कहें वाचक ! न इतना ज्ञान है।
पर था हितैषी विश्व का इस का हमें अभिमान है ।।१४।।

वह था अदम्यान्तःकरण सत्याग्रही प्रह्लाद का।
सत्यावलम्बन में कभी अनुभव किया न विषाद का ।।
वह था प्रशान्त समुद्र जो होता विक्षुब्ध कभी न था।
अविचल युधिष्ठिर का हृदय या वह विकार विहीन था ।।१५

वा कर्म योगी ज्ञान था गीतानुयायी पार्थ का।
आनन्द अक्षय था अहिंसा के वृती सिद्धार्थ का ।।
श्रम जीवि कृषकों के लिए प्रेमाद्रचित्त - पयोद था।
पददलित हरिजन जाति का उत्कर्षपूर्ण प्रमोद था ।।१६।।

अवतार उसका देश के सौभाग्य का साधन बना।
शब्दार्थ कर सकते न तत् सौजन्य की अभिव्यंजना ।।
होने सचेष्ट समय लगा सुन घोष शासक वर्ग था।
कुछ और ही होने लगी स्वातन्त्र्य की विश्रुत कथा ।।१७।।

संस्थापना उस काल भारत में हुयी कांग्रेस की।
निर्जीव जन समुदाय को जो शौर्य साहस दे सकी ॥
उद्घोषण कर दी तिलक ने स्थैर्य ले अभयत्व का।
अधिकार है मम जन्मसिद्ध स्वतन्त्रता के स्वत्व का ॥१८॥

राजर्षि था, स्वातन्त्र्य पथ का शान्त नेता वा कहो।
वा राजनैतिक युद्ध का निष्णात सेनानी अहो ॥
अविलम्ब बापू के, विमल वाचक ! विचार नये-नये।
रुचिराभरण नवयौवना कांग्रेसिता के बन गये ॥१९॥

सद्भावना से विश्व का बन्धुत्व दरशाते हुये।
'सर्वेऽपि सुखिन: सन्तु' का सिद्धान्त समझाते हुए ॥
सौहार्द से करते निवारण शत्रु के भी क्लेश का।
नेतृत्व गाँधी ने किया परतन्त्र भारत देश का ॥२०॥

उत्साह ले स्वातन्त्र्य का सुविचार ले प्रण पाल के।
जब पाणि में पहुँची पताका श्री जवाहरलाल के ॥
त्रय रंग रंजित वह अहा लहरा उठी अनुराग में।
संगम त्रिधारा का हुआ वा तीर्थ राज प्रयाग में ॥२१॥

सित-पीत - हरिताभामयी रुचिरा ध्वजा त्रिगुणात्मिका।
त्रिभुवन प्रसिद्धा हो चली धर्मार्थ काम प्रसाधिका ॥
एकत्र तीनों शक्तियाँ ब्राह्मी, भवानी, इन्दिरा।
मानो ध्वजा का रूप धर करने लगीं जय जय गिरा ॥२२॥

अथवा मुकुट हीरक हरिनमणि पुष्पराग जड़ा हुआ।
स्वातन्त्र्य के शिर पर सुशोभित हो चला बिछुड़ा हुआ ॥
उन्नत हुआ कहते हुए यों राष्ट्र ध्वज त्रयतत्व का।
अधिकार है मम जन्मसिद्ध स्वतन्त्रता के स्वत्व का ॥२३॥

चैतन्य जागृत हो उठी जनता सुबोध प्रचार से।
व्यापक हुआ संघर्ष भारत में अनेक प्रकार से ।।
निःशंक सत्याग्रह हुआ कुछ क्रान्ति से कुछ शान्ति से।
जग व्याप्त है आग्नेय-सौम्य द्विशक्तियों की कान्ति से ।।२४।।

उत्साह साहस बढ़ चला पारस्परिक संसर्ग का।
चलने लगा फिर दमन चक्र सतर्क शासक वर्ग का ।।
कांग्रेस का सौभाग्य था दिवसेश वर्षा काल का।
होता कभी था अभ्युदय, भय था कभी घन जाल का ।।२५

स्वातन्त्र्य प्रेमोन्मत्त, भारत वीर सब सत्याग्रही।
आगे बढ़े कहते हुए 'है वीर भोग्या ही मही ।।'
बलिदान दे निज प्राण का सुप्रमाण दे निज स्वत्व का।
करने रसास्वादन लगे मरते हुए अमरत्व का ।।२६।।

निःशस्त्र भारत ने किया द्रुत प्रश्न यों संसार से।
"वंचित किया जाता हमें क्यों आज निज अधिकार से ।।
अब आत्म निर्णय हो चुका सब व्यर्थ दुर्व्यवहार है।
स्वाधीनता को छीनने में क्या न अत्याचार है ।।२७।।"

छेदन, निघर्षण, ताप, ताड़न से परीक्षण हेम का।
होता, तथा होने लगा कांग्रेसिता के प्रेम का ।।
जब जब निकलते वीर थे संतप्त कारागार से।
उत्साह साहस दीप्त होता तेज के संचार से ।।२८।।

राजा प्रजा के बीच में संघर्ष बढ़ता ही रहा।
परिणाम क्या होगा अहो कुछ भी न था जाता कहा ।।
स्वातन्त्र्य-रव करने लगी परतंत्रता की शृंखला।
निर्जीव भारत देश फिर स्वात्माभिमानी हो चला ।।२९।।

चर्खा घुनाती कामिनी से आलि ने पूछा कहो।
पति "है कहाँ? कैसे? तुम्हें कुछ ज्ञात है? क्यों मौन हो?
वीरांगना ने यों कहा 'शीतल प्रलम्बोच्छ्वास में।
स्वाधीन है रहते हुए आजन्म कारावास में ॥३०॥'

झंडा नचाते खेलते शिशु ने समीरण से कहा।
"मिलने प्रवासी भारतीयों से अहा क्या जा रहा॥
तो शीघ्र कारावास जा अवकाश है न विराम का।
देना निमन्त्रण है उन्हें स्वातन्त्र्य के संग्राम का ॥३१॥"

आदेश सुन्दर पुस्तकों ने मुग्ध छात्रों को दिया।
रसरीति गाथा गान से क्या लाभ तुमने पा लिया।
स्वातन्त्र्य के स्वाध्याय का तुमको न क्या अवकाश है।
सम्प्रति विचारास्पद हमें काँग्रेस का इतिहास है ॥३२॥

चंचल हुआ वातावरण, गूँजी गिरा आकाश में।
"अविलम्ब भारत छोड़ दो सौहार्द्र भावोल्लास में॥"
आदेश देती है यही अब आत्म निर्भरता हमें।
बहते रहो, बहते रहो स्वातन्त्र्य प्रेम-प्रवाह में ॥३३॥"

वाचक! व्यतीत हुआ समय कुछ, विश्व व्यापक रण हुआ॥
जापान, इटली, जर्मनी में जग विजय का प्रण हुआ॥
इस युद्ध में जो क्षति हुई भारी ब्रटिश सरकार की।
अनिवार्य उसकी पूर्ति में थी योजना स्व-सुधार की ॥३४॥

संयुग कला निधि चारुहास सुभाष चन्द्रोदय हुआ।
अवलोक पूर्वाशा प्रभा, भारत सभय, निर्भय हुआ॥
अविचल सफल नेतृत्व का निज वीर ने परिचय दिया।
दृढ़ संगठन सोत्साह भारत राष्ट्र सेना का किया ॥३५॥



संयुग कला निधि चारुहास सुभाष चन्द्रोदय हुआ।
अवलोक पूर्वाशा प्रभा, भारत सभय, निर्भय हुआ ॥

अब देश को परतंत्र रखना हो गया दुःसाध्य सा।
स्वातन्त्र्य देने को हमें शासन गया हो बाध्य सा॥
उत्साह, अध्यवसाय, साहस शौर्य देख नया-नया।
स्वायत्त शासन भार भारत वीर को सौंपा गया॥३६॥

॥ इति सप्तम सर्गः॥

अष्टम सर्ग:

स्वातन्त्र्य - सूर्योदय सुखद होने चला उस काल था।
था व्योम भारत - भाग्य, उदयाचल जवाहर लाल था ॥
भारत प्रतीक्षा क्रुष्ट हो, पन्द्रह अगस्त प्रभामयी ।
सौन्दर्य - शोभा - शालिनी, ऊषा सदृश थी आगयी ॥१॥

पर हो गया वह अस्त, हन्त, सुभाषचन्द्र स्वदेश का ।
कब हो सका युगपत्, प्रकाश निशेश और दिनेश का ॥
स्वातन्त्र्य सविता के शुभागम की हमें दे सूचना ।
गौरांग संघर्षाम्युनिधि - विनिमग्न वह हिमकर बना ॥२॥

कुछ और ही चैतन्य गति से वह पवन बहने लगा ।
विश्वावबोधन - शील हो सोल्लास यों कहने लगा ॥
" मदमोह का त्यागन करो, अपराध है, सालस्यता ।
अविलम्ब जगती हो रही नव शासनांकवशंगता ॥३॥"

स्वातंत्र्य सौख्य प्रकाश से नैराश्यतम मिटने लगा ।
आलोक स्वागत के लिए संसार सोते से जगा ॥
शोणितमयी ज्यों राजती हो क्षितिज संग्राम स्थली ।
पारस्परिक विद्वेषरक्ता हो गयी नोआखली ॥४॥

उस ओर वह रजनी पिशाची की दशन तारावली ।
रविकर शरौघाभास से थी नष्ट सत्वर हो चली ॥
निर्दय उपद्रव सांप्रदायिक द्वेषपूर्ण नये - नये ।
इस ओर बापू के मनोहर प्रवचनों से मिट गये ॥५।

लज्जित उलूक विभावरी विरुदावली न सुना सके।
विग्रह विधान विरोधियों के कुछ न आदर पा सके॥
करने विहंग द्रुमालयों में रुचिर हर्ष ध्वनि लगे।
इस ओर स्वैरीगान में सोत्साह सोते स्वर जगे॥६॥

करने लगी हास्यानुभव अनुराग से नलिनावली।
करते हुए गुन्जन भ्रमर ने कोष से निज राह ली॥
यश - गान बन्दि समूह ने नव शासनागम का किया।
हो मुक्त कारावास से उल्लास का परिचय दिया॥७॥

प्रासाद के वातायनों में ही न थी किरणावली।
वह दीन जन की पर्णशाला भी प्रकाशित हो चली॥
स्वातन्त्र्य सुख शासक जनों तक ही न वह सीमित रहा।
जनतंत्र का सुन्दर सवेग प्रवाह भारत में वहा॥८॥

इस भाँति भारत में सुखद स्वातन्त्र्य सूर्योदय हुआ।
परतंत्रता के घोर तम से देश निज निर्भय हुआ॥
पर लग गया उसको ग्रहण हा सम्प्रदाय विधान का।
जिसको दिया इतिहास ने दे नाम पाकिस्तान का॥९॥

कर कार्य पूर्ण स्वतन्त्रता का शान्तिमय संघर्ष से।
बापू गये सुरलोक को ले सूचना यह हर्ष से॥
आघात वह उनके हृदय पर संप्रदायोन्माद का।
जाकर कहेगा क्या वहाँ ? यह है विषय न विषाद का ?॥१०॥

आओ करें कुछ संस्मरण उनके रुचिर उपदेश का।
संप्राप्त जिससे शान्ति हो निःश्रेय हो निज देश का॥
असहाय सा करके हमें वह कर्णधार चला गया।
आदेश देकर प्रेम से सन्मार्ग पर दिखला गया॥११॥

काठिन्य को मृदुभाव से, अपकार को उपकार से।
विद्वेष जीता जा सके सौहार्द शील विचार से ।।
पारस्परिक एकत्व गुण में बद्ध हो अनुराग से।
स्वातन्त्र्य पाया जा सका, सौलभ्य होता त्याग से ।।१२।।

निज शान्ति से ही विश्व में वह क्रान्ति व्यापक हो सकी।
समृद्धि अक्षय शान्ति दा रहती सदा सन्तोष की ।।
होता तितिक्षा से शमन अविलम्ब अत्याचार का।
दुःखान्त ही नाटक रहा है सर्वदा प्रतिकार का ।।१३।।

सन्यस्त भावासक्त हो, स्वातन्त्र्य के संग्राम में।
साफल्य पाना व्यक्त है, आदर्श गांधी नाम में ।।
बहते हुये सानन्द जीवन्मुक्ति के सुप्रवाह में।
आदेश जिसने ईश के अन्वेषणार्थ दिया हमें ।।१४।।

"विश्वेश प्रेमी ! मुक्ति पथ का श्रान्त यात्री तू कहाँ ?
तू चाहता जिसको तुझे वह ढूँढ़ता फिरता वहाँ।
तू जा रहा किस ओर है उस ओर से वह आ रहा ।।
कुछ और ही प्रिय है उसे तू और ही कुछ गा रहा ।।१५।।

तू ढूँढ़ता जिस रत्न को वेदान्त-वारिधि मग्न हो।
वह नाचता है दीन करुण कथापगा में नग्न हो ।।
अभिराम श्याम घनावली में देखता जिसकी छटा।
वह दीन जन नयनाश्रु बन तेरी प्रतीक्षा में डटा ।।१६।।

अगुणत्व वा सगुणत्व के जिसके दुराग्रह में पड़ा।
उसकी झलक दिखला रहा तू देख सत्याग्रह खड़ा ।।
दुर्दान्त दुर्जन दानवों से त्राण हीन परास्त हो।
तू चाहता है चक्र, वह देता अहिंसा है अहो ।।१७।।

वन-वीथि की निस्तब्धता में तू जिसे है ढूँढ़ता ।।
साहाय्य शून्य अनाथ के लो स्वान्त में उसका पता ।
देवालयों का शंखनाद सुना सुना तुमने सुना ।।
वह है किसी के आर्त्तरव में व्यक्त व्यस्त सखेऽधुना ।।।१८।।

सरिता-सलिल सम्पात सी कर सिक्त शीत समीर में।
सुखदार्द्रता पाते हुए तुम शिखर पर जिसकी रमे ।।
अन्यत्र ढूँढ़ विनीत चल रवि प्रखर कर संघात में ।
श्रमजीवि स्वेद शमार्थ देखो वह बहा उस वात में ।।१९।।

अवलोकता जिसकी छटा तू विविध सुमन विकास में ।
वह हंस रहा तेरे लिए है दीन के मृदु हास में ।।
क्यों भाव भरता है हृदय में साम्प्रदायिक द्वेष के ।
प्रतिबन्ध में वह है नहीं दिक्काल जाति प्रदेश के ।।२०।।

संकल्प पूरा हो गया वाचक ! जवाहरलाल का ।
निजदेश में न प्रसार है परतंत्रता के जाल का ।।
चक्रांकिता स्वाधीन भारत की पताका हो गयी ।
स्वातन्त्र्य रक्षा की हृदय में भावना लेकर नयी ।।२१।।

चिर साधना का मिल नया साफल्य आशातीत है ।
स्वातन्त्र्य का वाचक ! 'अभीत' प्रणीत गाना गीत है।
स्वाधीन कहने मात्र का समझा निपट अधिकार है।
कर्त्तव्य पथ गामी रहें इसका हमें न विचार है ।।२२।।

हम एक से छोड़े गये पर हैं सशंकित और से ।
दौर्बल्य होगा दूर निज कब तक कहो किस तौर से ।।
वह देश ऐसा कौन सा संसार में अक्षोभ है।
अपना बनाने में हमें जिसको न कुछ भी लोभ है ।।२३।।

निज शक्ति संचय के लिए साधन हमें उपलब्ध हैं।
पर क्यों न जाने हो रहे हम सर्वथा निस्तब्ध हैं॥
मागे परस्पर कर पकड़ कर आज बढ़ना है हमें।
समृद्धि के चंचल शिखर पर आज चढ़ना है हमें॥२४॥

पाया सदा इस देश से समृद्धि सौख्य विधान का
उपदेश गौतम के जिन्होंने ज्ञान का विज्ञान का॥
वे वृद्ध भारत को दिखाते खेल कूद नये नये।
गुरु तो रहा गुड़ ही बना पर शिष्य चीनी हो गये॥२५॥

भारत विरोधी चीन पाकिस्तान ने साहस किया।
सीमा प्रदेशों पर प्रबल आघात उसने कर दिया॥
प्रथमाराध विचार भारतवीर ने देदी क्षमा।
विश्रुत जवाहरलाल की सुमहिष्णुता थी अनुपमा॥२६॥

वाचक ! किया फिर चीन का अनुकरण पाकिस्ता
अविवेकमय उसको बनाया साम्प्रदायिक ज्ञान
शास्त्रीय प्रत्युत्तर मिला उसको संवेग सशस्त्र ज्यों
आओ करें हम सस्मरण अवलोक उसका चित्र यों॥२

शास्त्रिन बने तुम सबल शस्त्री स्वत्व संरक्षण किया।
अधिकार भारत का अजेय विपक्ष को दिखला दिया॥
तुम ताशकंद चले गये किस योग साधन के लिए।
लेली अखण्ड समाधि तत्र अशान्ति यापन के लिए॥२८॥

तुम तो अशोक बने स्वर्ग पर देश आज सशोक है
मिलता तुम्हारा वह न अब हमको कहीं आलोक है
तुम थे बहादुर विश्व के निज जन्म भू के लाल थे
स्वातन्त्र्य संस्थिति के लिए तुम देश के दिक्पाल थे॥२९



शास्त्रिन बने तुम सबल शस्त्री स्वत्व संरक्षण किया ।
धिकार भारत का अजेय विपक्ष को दिखला दिया ।।
म ताशकंद चले गये किस योग साधन के लिए ।
ली अखण्ड माधि तत्र अशान्ति यापन के लिए ।।१।।

तुम तो अशोक बने स्वर्ग पर देश आज सशोक है ।
मिलता तुम्हारा वह न अब हमको कहीं आलोक है ।।
तुम थे बहादुर विश्व के निज जन्म भू के लाल थे ।
स्वातन्त्र्य संस्थिति के लिए तुम देश के दिक्पाल थे ।।२।।

चक ! समय है एकता का भाव मानस में भरो।
बापू की शुभ स्मृति में विनीत विनय करो ॥
ातन्त्र्य रक्षा के लिए सब सावधान सचेष्ट हो।
ष्ट्र ध्वजा निज पाणि ले सोत्साह 'जय भारत' कहो ॥३०॥

"बापू ! हमें भी आत्मबल दो, धैर्य दो, उत्साह दो।
अभयत्व जिसमें प्राप्त हो वह विश्व प्रेम प्रवाह दो ॥
असहाय सेना के लिए सद्भाव दो, सामर्थ्य दो।
प्रणवीर हम जिससे बनें श्रद्धेय ! वह पुरुषार्थ दो ॥३१॥"

दिखला सकें हम विश्व को उत्कर्ष भारतवर्ष का।
सखला सकें साफल्य पाना शान्तिमय संघर्ष का ॥
ागे बढ़ें हम राजनैतिक क्षेत्र में संसार के।
ीचे झुकाना शिर पड़े न कदापि अत्याचार के ॥३२॥

स्वातन्त्र्य रक्षा के लिये हम शक्ति का संचय करें।
पारस्परिक अनुराग का उत्साह से अभिनय करें ॥
भ्रम हो हमें न कदापि कार्याकार्य के अभिज्ञान में।
पीछे रहें न कभी किसी से विश्व शान्ति विधान में ॥३३॥

न हो निज देश का, स्वाधीन हृदयोद्गार हों।
आदर्श उज्ज्वल हों हमारे हम प्रशस्त उदार हों ॥
निज संस्कृति में, सभ्यता में, शौर्य गुण सन्दोह में।
अनुराग दो, अनुलास दो, विश्वास दो, रुचि दो हमें। ३४।

"हो प्रगतिशील, प्रयत्नशील, प्रभुत्वशील स्वदेशिता।
तव चरण चिन्हों की रहे अनुगामिनी कांग्रेसिता ॥
विस्मृत न तव सिद्धान्त हों, विस्तृत हमारे ध्येय हों।
स्वातन्त्र्य गौरव गान ही कवि गायकों को गेय हों ॥३५।

इत्थं स्तुवन्ती मोहनं व्यामोह शमन मभीतिका ।
वाचक समाप्तिमगादियं 'स्वातन्त्र्य गौरव गीतिका' ।।
सततं स्मरन्ती शास्त्रिणं सौजन्य शौर्योपासिनम् ।
ललिता-सुलालित ललितलीलं, लोक लालन पालिनम् ।।३६।।

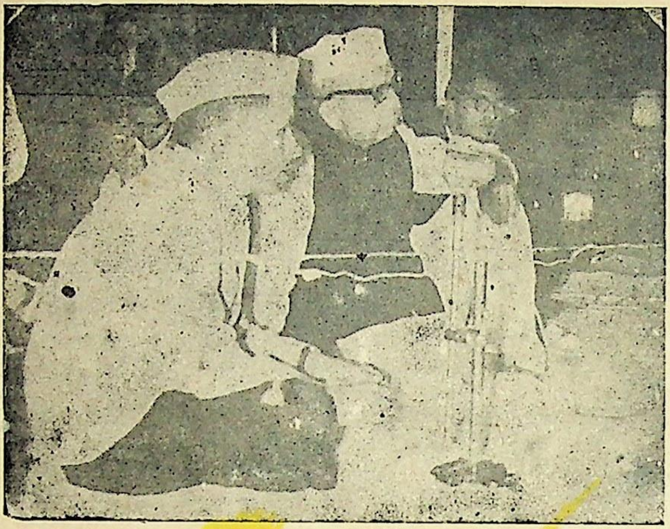
।। इति अष्टम सर्गः ।।

डॉ० राम स्वरूप आर्य, बिजनौर
की स्मृति में सादर भेंट–
हरप्यारी देवी, चन्द्रप्रकाश आर्य
संतोष कुमारी, रवि प्रकाश आर्य

अशुद्ध मुद्रित शब्दों की सूची

पृ० संख्या	पद्य संख्या	अशुद्ध मुद्रित शब्द	शुद्ध शब्द
१	४	वाचक	वाचक !
१	५	पुराणात्वाब्धि	पुराणत्वाब्धि
२	७	परमाणश्रों	परमाणुश्रों
२	६	वृहत्त था	वृहत्तथा
२	११	सदसद	सदसत्
२	११	अभमत्व	अभयत्व
३	१७	संजीवनी	संजीविनी
५	२६	द्विषद् गातक	द्विषद् घातक
५	२७	लोचनाम्वु	लोचनाश्रु
५	२८	मनरिचता	मनस्विता
६	३३	औषधि	औषधों
६	३५	अधीकार	अधिकार
१०	६	सास्टांग	साष्टांग
१०	६	मोहान्धाकूप	मोहान्धकूप
१०	६	रहाअ ति	रहा अति
१०	१०	भावषन्न	भावापन्न
१०	११	साफल्प	साफल्य
११	१३	वही	वहो
११	१६	न:सत्व	निस्सत्व
१२	२१	वृद्धि	वृद्धि से
१२	२१	सन्तन	सन्तत
१३	२७	अस्ताचलोरि	अस्ताचलोपरि
१४	३०	मार्गिक	मार्मिक
१६	४३	क्लेष	क्लेश
१६	४५	सम्बन्व	सम्भव

पृ० संख्या	पद्य संख्या	अशुद्ध मुद्रित शब्द	शुद्ध शब्द
१७	५२	कुंछ	कुछ
१८	५५	ससोक	सशोक
२०	८	अभूतपूर्वऽऽकार	अभूतपूर्वाऽऽकार
२१	२१	त्रिदिवेश	त्रिदिवेश
२३	२७	साफल्प	साफल्य
२४	३५	रवान्त	स्वान्त
३६	४७	निधन सदैव होता	निधन होता
४८	४८	कोटिल्य	कौटिल्य
५५	४१	परिणामत	परिणामत:
५५	४१	अपरिमित:	अपरिमित
५७	५३	अनुशरण	अनुसरण
५८	५४	कालेसे	काल से
५८	५८	व्यसना क्रान्त:	व्यसनाक्रान्त
५६	६४	लीलार विन्द	लीलारविन्द
६१	४	परनिज	परंनिज
६२	८	आत्पीय	आतपीय
६२	६	प्रियता वहा	प्रियतावहा
६४	१८	उद्घोषरण	उद्घोषणा
७१	१६	सी कर	सीकर
७२	२७	संवेग	सवेग
७२	२८	शास्त्रिन	शास्त्रिन्



लेखक और सेठ जी

अन्य कृतियां

१ स्मृति की रेखायें (समीक्षा)
२ विश्वास का बल (समीक्षा)
३ विनयपत्रिका (समीक्षा)
४ रामचन्द्रिका (समीक्षा)
५ विनयपत्रिका (सटीक)
६ संक्षिप्त रामचन्द्रिका (सटीक)
७ रघुवंशम् (तेरहवां सर्ग सम्पादित)

प्रकाशनाधीन

१ प्रहार (उपन्यास)
२ कड़वा घूंट (उपन्यास)
३ खरी खोंटी एकादशी (निबन्ध संग्रह)
४ अध्ययन और निष्कर्ष (साहित्यिक निबन्ध)
५ प्रसाद के चार नाटक